किसान चेतना और चौ. चरण सिंह

चौ॰ महीपाल सिंह 'नाला'

किसान-चेतना
और
चौधरी चरण सिंह

विषय-सूची

प्रस्तावना

खंड एक

किसान : संघर्ष, जागृति और संगठन ··· 21

मुसलिम काल से स्वतंत्रता-प्राप्ति तक किसानों पर अत्याचार ··· 23

मुसलिम काल में किसान संघर्ष और उसका इतिहास ··· 33

राजस्थान में कि सान जागृति ··· 60

पंजाब में किसानों का शोषण और किसान संगठन ··· 80

खंड दो

चौधरी चरण सिंह : किसान-चेतना के संदर्भ में

चौधरी चरण सिंह और उनका जीवन ··· 91

चौधरी साहब के सामाजिक कार्य ··· 96

चौ० चरण सिंह की राजनीतिक गतिविधि ··· 104

चौधरी साहब की आर्थिक नीति ··· 111

गांव और खेती की उपेक्षा ··· 125

बेरोजगारी का उन्मूलन ··· 129

किसान-चेतना
और
चौधरी चरण सिंह

मुगल काल से वर्तमान तक किसान आन्दोलन

महीपाल सिंह 'नाला'

ज्ञान भारती
4/14 रूप नगर
दिल्ली-110007
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण 1981 : **मूल्य 12.00**

चोपड़ा प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली
द्वारा मुद्रित

किसान चेतना
और
चौधरी चरण सिंह

ज्ञान भारती
दिल्ली-110007

प्रस्तावना

आज भारत के राजनीतिक दलों में किसानों की राजनीतिक शक्ति के दोहन की होड़ लगी है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के इतने वर्षों बाद किसान के प्रति प्यार की यह झलक क्या वास्तविक है या उसकी शक्ति का उपयोग करने के लिए लगभग सभी राजनीतिक व्यक्ति तत्पर हैं? कुछ भी हो, इतना जरूर है कि भूतकाल में उनकी शक्ति का उपयोग कभी कम और और कभी ज्यादा हो पाया है।

विश्व-इतिहास में भी किसानों का राजनीतिक शक्ति के उपयोग के अनेक उदाहरण हैं। फ्रांस से राजा लुई चौदहवें ने सामन्तों से अपनी लड़ाई में बल प्राप्त करने के लिए पेरिस में किसान रैली व्यक्तिगत धन खर्च करके बुलाई थी और जब इन्हें (किसानों को) अपनी शक्ति का अहसास हुआ तो किसानों ने वहां से जाने में इनकार कर दिया। राजा की गद्दी समाप्त कर दी गयी और फ्रांस में क्रांति हुई। सोवियत संघ में भी किसानों ने क्रान्ति की, जिसे लोग भ्रमवश 'मजदूरी की क्रान्ति' कहते हैं। क्योंकि वहां पर उद्योग इतनी संख्या में नहीं थे कि केवल श्रमिक-शक्ति पर ही क्रान्ति होती। इस क्रान्ति में भी किसान-शक्ति ही ने सफलता प्राप्त की थी। चीन में भी माओ-त्से-तुंग ने किसान-शक्ति और किसान-चेतना का ही उपयोग किया था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किसान-शक्ति, जो कहीं जागृत अवस्था में और कहीं सोई अवस्था में विद्यमान है, उसमें चेतना लाने, उसे जगाने का कार्य समय-समय पर कुछ लोगों ने किया। विद्यार्थी-जीवन से आज तक मेरा सम्पर्क किसान नेताओं से रहा है। मेरा पैतृक व्यवसाय भी कृषि ही था और कानून का जानकार होने के नाते मैं यह कह सकता हूं कि किसानों में आर्थिक, सामाजिक और राज-

नीतिक जागृति पैदा करने में चौधरी चरणसिंह जी का जितना हाथ है उसे भुलाया नहीं जा सकता। सरकार में रहते हुए वह जिस भी पद पर रहे, उसमें उन्होंने विभागानुसार किसान और खेतिहर मजदूर के लिए बराबर चिन्ता की, अनेक कारगार कदम उठाये। जिनके पास न घर था, न पानी पीने के लिए कुएं का ही स्वामित्व था, पशु बांधने के लिए ने ही सहन और साया था, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन द्वारा चौधरी साहब ने उन्हें स्थायी स्वामित्व दिया, उनकी हर-संभव सहायता की। जो किसान प्रतिदिन जमींदारों द्वारा बेदखल किये जाते थे उनसे कुछ मुआवजा लेकर भूमिधारी के अधिकार दिलाये। वह एक किसान परिवार के सदस्य होने के नाते किसान—खासकर भूमिहीन किसान—के बारे में सदैव चिंतित रहते हैं। चौ० चरणसिंह जी का जीवन निष्कंलक है, वह ग्रामीण अर्थव्यवस्था के प्रति जागरूक और चिंतित दिखाई देते हैं। प्रांत की राजनीति से निकलकर जब वह केंद्र में आये तो स्वाभाविक ही था कि अपनी नीतियों को, जो ग्रामीण भलाई के लिए उपयुक्त समझी जाती थीं, प्रतिपादित कराने में वे सक्रिय हो उठते। सन् 1975 से पहले केंद्रीय स्तर पर कोई किसान संगठन नहीं बन पाया था। उन्हीं की प्रेरणा से **किसान सम्मेलन** नाम का एक संगठन बनाया गया। 23 दिसंबर 1978 ई० को पूरे भारत के किसानों की एक रैली दिल्ली के बोट क्लब पर की गई। लाखों किसान वहां उपस्थित हुए तथा जो लोग वहां उपस्थित न हो सके उनके मन में भी एक चेतना जागी और केंद्रीय आधार पर कश्मीर से कन्याकुमारी तक किसान के बारे में सोचा जाने लगा। पूरे देश का किसान संगठन कुछ स्वार्थी और शोषण करने वाले लोगों को पीड़ा का कारण बना, अतः चौ० चरणसिंह पर कुलक, जातिवादी और हरिजन-विरोधी होने के कलंक भी लगाये जाने लगे।

इस पुस्तक में लेखक ने विस्तार से लिखा है कि उन्होंने हरिजनों और छोटे-छोटे किसानों तथा खेतिहर मजदूरों के लिए जो काम किए वह किसी की भी राजनेता द्वारा किये गये कार्यों की तुलना में सुदृढ़ और टिकाऊ हैं। डॉ० लोहिया किसान का उत्थान समाजवादी विचारधाराओं के जरिये करने के लिए प्रयत्नशील थे। जबकि चौधरी चरणसिंह जी गांधीवादी विचारधारा से, गांधी की आर्थिक नीति से इस शोषित वर्ग का उत्थान करने को उत्सुक हैं। चौधरी साहब गांधीवादी अर्थनीति के बारे में पुस्तकों, समाचारपत्रों और जनता सम्मेलन में अपने विचार रखते हैं। उनके अनुसार बेरोजगारी, गरीबी तथा जात-पांत का उन्मूलन गांधीजी के बताये हुए सिद्धांतों पर ही किया जा सकता

है। इस पुस्तक में लेखक ने ब्योरेवार उनकी गांधीवादी विचारधारा पर विस्तार से प्रकाश डाला है। अतः मेरा दृढ़ विश्वास है कि आज किसान जागृति का मूल स्रोत चौधरी साहब ही हैं। उनके द्वारा पैदा की गई चेतना अमर रहेगी और फलती-फूलती रहेगी। पाठकगण इस पुस्तक द्वारा स्वयं भी निर्णय लेने की स्थिति में होंगे कि वास्तव में चौधरी साहब पर जो कलंक लगाये जाते हैं, वह द्वेषवश और राजनीति से प्रेरित होते हैं। मेरी परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि चौधरी साहब हमारे बीच कम से कम सौ वर्ष रहें और इस दीन-दुखी, भूखे, नंगे और बेसहारा समुदाय को अपनी शांति के अनुसार प्रेरणा देते रहें।

चौधरी चरणसिंह एक सच्चे आर्य हैं। अतः किसान के प्रति उनकी पीड़ा किसी से छिपी नहीं है। जिस कृषक-वर्ग को अंग्रेज और स्वतंत्र भारत के सत्ता-धारियों ने पंगु बना दिया है, भूखे और नंगे बनाकर चंद मुट्ठी भर लोगों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि हेतु जात-पांत के घेरे में लाकर खड़ा कर दिया है, उस जाल से किसान-वर्ग को निकालने के लिए चौधरी चरणसिंह जी ने दिल्ली में बैठकर उन्हें जगाने के लिए बिगुल बजाया है। ऋग्वेद में भी कृषि को बहुत महत्त्व दिया गया है। उसमें भी किसानों को कृषि के उन्नत ढंग, सिंचाई के साधन, खेती के शत्रु और किसान की पूंजी का ब्योरा विस्तार से दिया गया है। अथर्ववेद में भी कृषक या वणिक की स्मृद्धि के लिए अनेक प्रार्थनाएं हैं, जिनसे किसान के आर्थिक जीवन की प्रगति सूचित होती है। 'शतपथ ब्राह्मण' में भी खेती को महत्ता देकर उसकी प्रक्रिया का उल्लेख है। 'शतपथ ब्राह्मण' में राजा के चयन के बाद मनोनीत राजा प्रतिज्ञा करता था कि "माता पृथिवी, तुम मेरी हिंसा न करो और मैं तुम्हारी हिंसा नहीं करूंगा।" व्याख्याकार की सम्मति में वनस्पति और कृषि की रक्षा के लिए सोम को साक्षी बनाया जाता था। यजुर्वेद (9/22) के अनुसार राजा को यह कह कर चुना जाता था कि "तुम्हें यह राष्ट्र दिया जाता है कृषि के लिए, जनता के क्षेम के लिए और सर्व-विध पोषण और उन्नति के लिए।"

बौद्ध युग में भी ग्रामों में कृषि योग्य भूमि में किसानों की व्यक्तिगत पट्टियां होती थीं, जिनको एक-दूसरे से अलग करने के लिए बीच-बीच में सिंचाई की नालियां बनाई जाती थीं (1/3364/167, 5/412 : धम्मपद, श्लोक 80, 145, थेर गाथा 19)। वैदिक युग में कृषक गोपालक आदि वर्ग अपने लिए नियम स्वयं बनाते थे, जो न्यायालय को भी मान्य होते थे। (वही 11/20-22)। इस युग में भूमि का स्वामी कृषक था। "प्रथमच्छेदस्य केदारम" से भी यही सूचित होता है कि भूमि जोतने वाले की ही होती थी। राज्य का उस पर स्वा-

मित्व नहीं था। पृथिवी का यह कथन है कि "मुझे कोई मर्त्य न दें।" राज्य का उस पर किसी रूप में स्वामित्व नहीं था। ऐसी स्थिति में जमींदारियों का प्रश्न ही नहीं उठता।

यूनानी इतिहासकारों ने तो इस पर आश्चर्य प्रकट किया था कि भारतवासी युद्ध करते हैं, परन्तु इन युद्धों के सिलसिले में शत्रु के कृषकों को दुःख नहीं देते, फसलें नष्ट नहीं करते। परन्तु, खेद है कि स्वतंत्र भारत के युग में किसान के साथ सौतेला व्यवहार किया जा रहा है। शहर और गांव का भेद, धनी और निर्धन की दूरी, किसान और पूंजीपति की शिक्षा और स्वास्थ्य, सूद तथा अन्य सुविधाओं का भेद, यहां तक कि ग्रामीण स्त्रियों के लिए शौचालय तक नहीं हैं, समूचा सरकारी तंत्र, सरकारी नेतृत्व और सरकारी व्यय नगरों में अमेरिका-जैसी भौतिक सुविधाएं जुटाने में संलग्न है। एक ओर रंगीन दूरदर्शन बनाये जा रहे हैं मगर दूसरी ओर 50 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण समाज पेट भर भोजन पाने में असमर्थ है। नेतृत्व जहां नगरों में बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएं बनाने में संलग्न है, वहां ग्रामीण लोग आसमान के खुले साये में रात गुजार रहे हैं। जहां देश का मुट्ठी भर चोरबाजार, काले धन और टैक्सों की चोरी से दूध, दही और अन्य पौष्टिक पदार्थों से ऊब चुका है वहां अन्न पैदा करने वाला किसान का बेटा देश की सीमाओं पर बर्फ, बारिश तथा रेगिस्तान में देश की रक्षा का दायित्व लेकर, पूंजीपतियों और भ्रष्ट नेतृत्व के महलों का 'प्रहरी सेवक' बनकर छाछ भी पीने में असमर्थ है। अतः चौधरी चरणसिंह जी ने इस सिद्धांतहीन राजनीति, काम के बिना धन, अंतरात्मा के बिना आनंद, चरित्र के बिना ज्ञान, नैतिकता के बिना व्यापार, मानवता के बिना विज्ञान, त्याग के बिना दया के विरुद्ध आह्वान किया है, किसान तथा निर्धन वर्ग को चेतना दी है। उसी चेतनास्वरूप चौधरी चरणसिंह के कार्यकलापों को इस पुस्तक में लिखने का प्रयत्न किया गया है।

अतः आशा की जाती है कि पाठकगण पुस्तक के पढ़ने से स्वयं निर्णय देने की स्थिति में होंगे कि चौधरी चरणसिंह जी ने किसानों को जगाने के लिए और उनमें चेतना पैदा करने के लिए जो प्रयत्न किये हैं, वह किसी पथ-प्रदर्शक या पैगंबर से कम नहीं! मुझे इस पुस्तक की यह प्रस्तावना लिखकर हर्ष हो रहा है।

—जे० पी० गोयल
सीनियर एडवोकेट, सुप्रीम कोर्ट

बी-116, नीति बाग
नई दिल्ली-110049

भूमिका

सन् 1980 का वर्ष किसान मांग, किसान आन्दोलन, किसान कूच, और किसान दिवस के रूप में सदैव याद रहेगा। गुजरात और महाराष्ट्र में गन्ना और प्याज के मूल्य बढ़ाने के लिए विपक्ष की छः पार्टियों ने मिलकर किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया, उत्तर प्रदेश गन्ना आन्दोलन; उसके सही और वाजिब दामों के लिए गन्ना मिलों पर हड़ताल की गयी। सरकार ने गन्ने के दाम (मूल्य-निर्धारण आयोग) के 13/- रुपये प्रति क्विटल के विपरीत 16/- रुपये प्रति क्विटल किया, फिर प्रदेश सरकार ने किसानों के विरोधस्वरूप 20/- रुपये प्रति क्विटल किया, परन्तु किसानों की मांग थी कि कृषि उपकरणों, खाद, डीजल तथा अन्य घरेलू चीजों की तुलना में मूल्य कम हैं, चीनी के दाम बढ़ रहे हैं। अतः किसान हड़ताल पर चले गए और मिलों को गन्ना देना बन्द कर दिया तथा सरकार ने 3/- रुपये प्रति क्विटल बढ़ा दिया। उधर बिहार और हरियाणा के किसान भी अपनी कृषि सम्बन्धी मांगों को लेकर आन्दोलन की राह पर खड़े हैं। तमिलनाडु में किसान बन्द के कारण कई कृषक गोलियों के शिकार हुए। समाचार-पत्रों में दबी आवाज से लिखा जाने लगा है कि "किसान जाग चुका है, किसान अपनी मांगों के लिए सचेत है। दूसरी ओर सरकार इन आन्दोलनों को दबाने के लिए नये-नये षड्यंत्र कर रही है। कांग्रेस जनों को पार्टी की ओर से किसान आन्दोलन में भाग न लेने के लिए निर्देश दिये जा रहे हैं तथा किसानों को सरकार की ओर से कहा जा रहा है कि सरकार तो पहले से ही किसानों की शुभचिन्तक है। थैलीशाही पूंजीपतियों के समाचार-पत्र उपभोक्ताओं की

दुहाई देकर किसान आन्दोलन के यज्ञ में पानी डाल रहे हैं। यह सब कुछ होते हुए भी शनैः-शनैः पूरे देश का किसान एक मंच पर आ रहा है। इतना ही नहीं, महामहिम राष्ट्रपति श्री संजीव रेड्डी को अपना सम्बन्धित भाषण अलग रख कर जो उन्हें किसी वैज्ञानिक गोष्ठी में देना था कहना पड़ा, "किसानों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मैं सबसे पहले किसान हूं बाद में अन्य।" अतः किसान आन्दोलन को हमें प्राचीन काल से देखना होगा तथा चौ० चरणसिंह जी जो किसान चेतना के प्रवर्तक हैं, उनके जीवन से पहले भी किसान आन्दोलन होते थे, उन पर भी दृष्टि डालनी होगी। वह किसान आंदोलनों, सामंतों के विरुद्ध होते थे तथा उनमें हिंसा का प्रयोग भी होता था; परंतु स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हिंसा नहीं अपितु हिंसा द्वारा किसानों में जो चेतना जगायी वह चौधरी चरण-सिंह के कार्यकलापों और उनकी चेतना का परिणाम है। वह सरकार में रहते हुए किसान के लाभ के लिए, मजदूरों के रोजगार के लिए हमेशा सचेत रहे। बाहर रहकर भी कुछ साथी—जिनमें समाजवादियों का विशेष स्थान है—किसानों और मजदूरों के लिए लड़ते रहे। अतः इस किसान-आंदोलन को, किसान-चेतना को तथा किसान-संगठन को गांधीवादी विचारधारा से देखना होगा। स्वतंत्रता से पहले किसान आंदोलनों में स्वतंत्रता की भी भावना होती थी। परंतु वर्तमान में किसान-आंदोलन केवल शुद्ध आर्थिक पहलू संजोये हुए है और गांधीवादी विचारधारा से अपनी मांगों को मनवाने के लिए सचेष्ट है।

कुछ विद्वान और किसान नेता यह मानने को तैयार नहीं हैं कि बहुत पहले मुगलकाल में भी किसान-आंदोलन हुए। परंतु इलियट ने 'भारत के इतिहास' नामक पुस्तक में मुस्लिम-काल के किसानों की बाबत लिखा है कि आज (अंग्रेज-काल में) भूमि कर मुक्त माफियों की जब्ती पर शोर मचाया जाता है, परंतु इन इतिहासों (मुस्लिम-काल के इतिहासों) के प्रत्येक पृष्ठ से प्रकट होता है कि उस समय के कानून के अनुसार किसी भी भूमि को जब्त कर लिया जाता था, बल्कि एक बार नहीं बार-बार जब्त किया जाता रहा।" अतः मुगल काल में जितने संघर्ष होते थे, वह सब गद्दी के लिए ही नहीं बल्कि उनमें आर्थिक संघर्ष, किसान संघर्ष भी शामिल होते थे। उस प्राचीन इतिहास को भी देखना होगा जिसके द्वारा उत्तरी भारत में मुगल काल से लेकर वर्तमान तथा किसान आंदोलन किन-किन परिस्थितियों में दबाए गए, उन्हें तथा उनके संचालकों को चोर, लुटेरे, राहजन, कुलक, राज्य-विरोधी कहकर तथा जात-पांत की घृणा फैलाकार अपनी लूट-खसोट और साम्राज्यवादी शक्तियों को स्थिर किया गया था।

लेनिन की 'राजनीतिक ब्लैकमेल' नामक पुस्तक का वह अंश जिसमें उन्होंने कहा, "यह लिखना उचित ही होगा जिससे सच्चाई का पता लग सके," अतः लेनिन के अनुसार—"राजनीति में, अर्थात्, मानवी संबंधों के उस क्षेत्र में जिसका संबंध व्यक्तियों से नहीं बल्कि दसियों लाख लोगों से होता है। ईमानदारी का मतलब यह होता है कि कथनी करनी के इस तरह अनुरूप हो कि उसकी सच्चाई की आसानी से जांच की जा सके।" आज भी यह कहावत चरितार्थ हो रही है। कृषक वर्ग के साथ करनी में भेद किया जा रहा है।

प्राचीन काल में मंत्रबल के आधार पर वैदिक पुरोहितों का तथा उनकी शक्ति का राजतंत्र आधिपत्य स्वीकार करते थे। यज्ञों का अनुष्ठान करनेवाले ब्राह्मणों पर धन और दौलत की बौछार करके राजा लोग चैन की सांस लेते थे, तथा ऋषिवाक्यों द्वारा राजा लोग प्रजा का शोषण करते और प्रजा-शक्ति के विकास में बाधा डालते थे। राजा लोग सूर्य की भांति प्रजा का, चाहे उसमें किसान हो, वैश्य हो, सारा धन-वैभव और उसकी इज्जत लूटकर अपनी मनोकामना पूरी करते थे। प्रारंभिक काल में स्वायत्त शासन थे, परंतु मौर्य युग के बाद गणराज्य समाप्त होते गए तथा क्षत्रिय और पुरोहित-शक्ति ने फिर अपना स्थान बनाना प्रारम्भ कर दिया और यह दोनों शक्तियां मिलकर सहकारी भाव से जनता को शोषण करती रहीं। मुसलमानों के आने से पहले ही ये शक्तियां आपस में लड़-भिड़कर दुर्बल हो चुकी थीं; और मुस्लिम-काल में तो इनका सम्पूर्ण नाश हो गया। मुसलमान धर्मप्रवर्तक मोहम्मद साहब के पुरोहित शक्ति के शत्रु होने तथा मूर्तिपूजक हिंदुओं को काफिर कहने के कारण भारतवर्ष में पुरोहित तथा क्षत्रिय-कुलों का सर्वनाश हो गया। जो क्षत्रिय बचे वे किसान, पशुपालक, चरवाहे और मजदूरों की शक्ल में क्षुद्र अवस्था में अपनी जिन्दगी बसर करने लगे। कुछ बचे हुए क्षत्रिय, जो अपनी सत्ता को स्थिर रखना चाहते थे, या तो लड़-लड़कर नष्ट हो गये या मुस्लिम सुलतानों से मिलकर जनता का शोषण करने लगे। अतः इसी काल में स्वाभिमानी किसानों ने मुस्लिम तथा हिंदूशाही सामन्तों के विरुद्ध संघर्ष किये, जिसमें कभी सफलता और कभी असफलता मिलती रही, जिसका उल्लेख करना आवश्यक है। जिसके विरोधस्वरूप उन्हें लुटेरे, चोर और राहजन कहा गया तथा अलग-अलग जातियों में बांटकर उनके संगठनों को तोड़ा गया। उनके साथ जुल्म किये गये। जो अत्याचार आज तक कृषक समाज में अपना स्थान किसी-न-किसी रूप में बनाये हुए हैं। स्वतन्ता-प्राप्ति के बाद चौ० चरणसिंह ने केन्द्रीय स्तर पर कृषक वर्ग को संगठित होने का आह्वान किया।

किसान के शोषण के विरुद्ध चौधरी चरणसिंह ने जो नारा दिया है उसे देश के अन्य नेता भी स्वीकार करने लगे हैं। भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री अ० बि० वाजपेयी ने नजफगढ़ में किसान-सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा था कि "पिछले पांच वर्षों में किसानों में एक नई चेतना आई है। गत 30 वर्षों से सरकार उनकी मजबूरियों का फायदा उठा रही थी।" (दैनिक हिन्दुस्तान 2, मार्च 1981)।

अतः चौ० चरणसिंह जी की ही प्रेरणा से किसानों में एक चेतना आई है, जिसको यथाशक्ति इस पुस्तक में लिखने का प्रयत्न किया है।

चौ० चरणसिंह के आह्वान पर देश की इजारेदार पूंजीपति शक्तियां विचलित हो उठीं तथा उन पर जातिवादी, हरिजन-विरोधी, स्त्री-विरोधी होने का कलंक लगाया गया, जिसका इस पुस्तक में विस्तार से उल्लेख किया गया है। कुछ लोगों ने उसे कुलक अर्थात् जमींदारी के पोषक होने की भी बात कही है। परन्तु 'स्टडीज इन अगरेरियन सोसाइटी ऐंड पीजेंटसरेबीलन इन कोलोनियल इंडिया' के पृष्ठ 218 पर लेखक कहता है: "जमींदारी खात्मा आन्दोलन में जाट लीडर चरणसिंह अग्रणी रहा। वह बड़े जमींदारों का खतरनाक शत्रु और छोटे किसानों का पोषक है।"[1]

पी० ब्रास की पुस्तक 'फंक्शनल पॉलिटिक्स इन ऐन इंडियन स्टेट' तथा 'द कांग्रेस पार्टी इन उत्तर प्रदेश रिपोर्ट' (बंबई 1966), 'अबोलिशन आफ जमींदारी; टू आल्टर्नेटिव्स' (इलाहाबाद 1947) के अनुसार तथा उपरोक्त रिपोर्टों के आधार पर हम चौधरी साहब पर कुलक होने का अभियोग नहीं लगा सकते और न ही जाट-पोषक होना सिद्ध कर सकते हैं, क्योंकि इन्हीं रिपोर्टों में लिखा है कि "श्री चरणसिंह वाज़ ऐन ऐक्टिव मेंबर ऑफ जमींदारी अबोलिशन कमेटी सेट अप इन 1946 इट इज नोटिसिबल दैट अमंग द 26 वेयर जाट ऐण्ड द फाइव ऑफ दीज वेयर मैगनेट्स फ्रॉम द कुचेसर इस्टेट।"[2] यानी "चौ० चरणसिंह जमींदारा खात्मा कमेटी के, जोकि 1946 में बनाई गई थी, सक्रिय सदस्य

1. It was appropriate that one of the Centers of Zamindari abolition compaign should have been Meerut under the jat leader Charan Singh. The most dangerous enemy of the great landlord, was the small cultivating landlord who here was the jat peasent proprietor."
2. Meerut S. R. 1940, p. 56. Appx. IX

रहे। और यह भी ध्यान देने योग्य है कि मेरठ जिले में 5000/- रुपए की मालगुजारी देने वालों में छ व्यक्ति जाट भी थे।"

चौ० चरणसिंह जमींदारों और किसानों के साथ भेदभाव को, जिनके बीच में आर्थिक और सामाजिक खाई और दूरी पैदा हो गई थी, सहन नहीं कर सके। जमींदारों का यह मुट्ठी भर तबका किस प्रकार से गरीब किसानों का शहरों और नगरों में शोषण करता था। कर्ज के बदले में उन्हें उनकी भूमि, घर और बैलों से वंचित करता था। यह सब-कुछ उनके लिए दर्द और पीड़ा बना हुआ था। अतः किसानों की भलाई के लिए सरकार में रहते हुए उन्होंने जो कुछ भी किया, इस पुस्तक में विस्तार से लिखा गया है। इस पुस्तक को आरम्भ करने से पूर्व पाठकों को यह बताना भी अनुपयुक्त न होगा कि उत्तर प्रदेश की कुल खेती योग्य भूमि पर बड़े जमींदारों का कितना अधिकार था जिस कारण से किसानों के मसीहा चौ० चरणसिंह को जमींदारी विनाश के लिए सक्रिय होना पड़ा।

1946-47 ई० के० आधार पर मालगुजारी देनेवाले

नाम जिला	25 रु० से कम देनेवाले	25-250 तक	250-1000	1000 से 5000
सहारनपुर	29 %	34.8%	15.3%	11.9%
मुजफ्फरनगर	26.3%	37.9%	15.2%	14.0%
मेरठ	31.2%	40.8%	13.8%	9.6%
बुलन्दशहर	13.2%	25.9%	18.2%	15.5%
अलीगढ़	14.7%	24.0%	17.2%	18.0%
इटावा	8.0%	25.2%	25.4%	19.0%
कानपुर	8.5%	29.2%	25.7%	23.0%
पीलीभीत	5.7%	23.0%	33.4%	24.6%
खेरी	2.7%	9.6%	6.5%	11.1%
लखनऊ	5.4%	23.5%	22.8%	18.0%
रायबरेली	3.2%	9.9%	8.0%	11.8%
सीतापुर	2.4%	12.2%	12.2%	10.8%
फैजाबाद	5.3%	22.0%	8.5%	6.2%
प्रतापगढ़	5.1%	8.0%	11.3%	7.0%

बहराइच	0.9%	3.8%	4.0%	5.8%
गोंडा	5.8%	11.2%	6.1%	7.9%
इलाहाबाद	7.5%	20.4%	15.0%	17.7%
वाराणसी	7.3%	19.0%	16.5%	15.4%
जौनपुर	18.3%	31.7%	15.6%	10.7%

इस तालिका से स्पष्ट दिखाई देता है कि उक्त जिलों में छोटे किसानों पर भूमि नाममात्र की रह गई थी। अगली तालिका में हम भली भांति जान सकते हैं कि मुट्ठी-भर लोगों का खेती योग्य भूमि पर कितना अधिकार था। और वह सारी भूमि के किस हद तक मालिक थे। कृषक वर्ग कर्ज के बोझ में ज्यों-ज्यों दबता गया, अदालतों ने महाजन और सूदखोरों को कृषकों की भूमि डिग्री और बेदखली द्वारा सौंपी। यही सिलसिला सारे भारत में चलता रहा। गरीब गरीब होता गया और अमीर अमीर। दक्षिणी भारत और राजस्थान में तो कृषकों को कोई भी अधिकार नहीं था कि वे अपनी भूमि का, अपनी उपज का तथा अपने श्रम का उचित लाभ उठा सकें। इसी प्रसंग में राजस्थान के बिजौलिया किसान आंदोलन की याद आयी, कुछ कहना अप्रासंगिक न होगा : वहां पर किसानों के साथ जागीरदार लोग किस कदर अत्याचार करते थे। वहां पर कृषकों को न तो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अधिकार थे और न ही शिक्षा-जैसी कोई सहूलियत ही थी। केवल शोषण, बेगार ! अपनी इज्जत और मान-सम्मान बेचकर जीवित रहने का कर्त्तव्य ही उनका अधिकार था। अतः चौधरी चरणसिंह ने लखनऊ से आकर दिल्ली में केन्द्रीय स्तर पर किसान वर्ग को एक मंच पर आने का आह्वान किया, जिसको पुस्तक द्वारा आपके सामने संक्षेप में रखा जा रहा है।

तालिका : 1946-47 ई० के आधार पर भूमिपति और मालगुजारी
खेती योग्य कुल भूमि पर प्रतिशत के अनुसार जमींदारों का अधिकार

नाम जिला	5,000 से 10,000 रु० तक व्यक्ति और प्रतिशत भूमि		10,000 से ऊपरवाले व्यक्ति और कुल भूमि प्रति०	
सहारनपुर	7 व्यक्ति	2.5% भूमि	4 व्यक्ति	6.5% भूमि
बुलन्दशहर	24 ,,	7.9% ,,	18 ,,	17.5% ,,
अलीगढ़	24 ,,	7.3% ,,	23 ,,	18.9% ,,
एटा	7 ,,	2.9% ,,	9 ,,	33.7% ,,

पीलीभीत	3 व्यक्ति	2.7% भूमि	7 व्यक्ति	20.6% भूमि
खेरी	4 ,,	2.6% ,,	13 ,,	67.6% ,,
लखनऊ	8 ,,	4.7% ,,	10 ,,	25.7% ,,
रायबरेली	11 ,,	4.7% ,,	27 ,,	62.5% ,,
सीतापुर	14 ,,	4.8% ,,	20 ,,	51.5% ,,
फैजाबाद	13 ,,	4.4% ,,	15 ,,	67.0% ,,
सुलतानपुर	7 ,,	3.4% ,,	14 ,,	48.0% ,,
प्रतापगढ़	15 ,,	8.8% ,,	14 ,,	60.0% ,,
बाराबंकी	16 ,,	17.6% ,,	21 ,,	43.0% ,,
बहराइच	3 ,,	1.9% ,,	11 ,,	83.6% ,,
गोंडा	7 ,,	2.6% ,,	10 ,,	66.4% ,,

यह पुस्तक कृषकों, कृषक-हितैषियों तथा चौ० चरणसिंह जी, भूतपूर्व प्रधानमन्त्री भारत सरकार, को उनके जन्म-दिवस 23 दिसम्बर (1982) को समर्पित कर रहा हूं। आशा है कि पाठकगण पुस्तक में रह गई किसी त्रुटि के लिए क्षमा करेंगे। हो सकता है कि किसी पाठक को या किसी नेता को मेरी लेखनी से कुछ कष्ट हो, वह भी स्नेहपूर्वक मुझे क्षमा करेंगे।

चौ० महीपाल सिंह 'नाला'

ग्राम व डॉ० नाला
जिला मु० नगर (उ० प्र०)

खंड एक

किसान :
संघर्ष, जागृति और संगठन

मुस्लिम काल से स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक किसानों पर अत्याचारों का इतिहास

सामन्त प्रथा

सामन्त प्रथा का जन्म राजतन्त्र के साथ ही हुआ। परन्तु वह समाज के विकास की सीढ़ी थी। जबकि धनोत्पादन का साधन मात्र कृषि और कुटीर उद्योग थे। व्यापार बहुत सीमित था। यातायात के साधन नितांत अविकसित थे और स्वावलम्बी आर्थिक इकाइयों में बंटा हुआ था, उस समय सामन्त प्रथा समाज का एक आवश्यक अंग थी। यान्त्रिक शक्ति तथा यन्त्रों के आविष्कारों के परिणामस्वरूप जो औद्योगिक क्रान्ति हुई तो उसके नतीजे में पूंजीवादी व्यवस्था का विकास हुआ। उसके कारण राजतन्त्र तथा सामन्तवाद का पतन हुआ। 19वीं शताब्दी के अन्त तक यूरोपीय देशों में सामन्तवाद समाप्त हो गया। परन्तु आर्थिक दृष्टि से पिछड़े एशियाई और अफ्रीकी देशों में सामन्तवाद जीवित रहा। 20वीं शती में क्रमश: यहां भी उसका पतन हो गया। आज प्राय: सभी देशों से सामन्ती प्रथा का लोप हो चुका है।

राजस्थान में सामन्त प्रथा

राजस्थान में सामन्त प्रथा का स्वरूप थोड़ा भिन्न था। क्योंकि

वह राजाओं की सैनिक व्यवस्था और सामन्त प्रथा संगठन के साथ जुड़ी हुई थी। जब दिल्ली में गुलाम सुल्तानों और बाद में मुगलों का शासन स्थापित हो गया और उत्तर भारत के राजपूत नरेश उनसे पराजित होकर राजस्थान के निर्जन प्रदेश में आकर बस गये, तो उनके साथ उनके कुटुम्ब, सेनानायक और दरबारी भी राजस्थान मरुभूमि में चले आए। इन्हीं लोगों की सहायता से राजपूत नरेश ने यहां अपने राज्य स्थापित किए। अत: राजाओं ने उनको जागीरें देकर अपना सामन्त बनाया। जैसे-जैसे राज्यों का विस्तार होता गया, वैसे ही वैसे पुराने सामन्तों की जागीरों और अधिकारों में वृद्धि होती गयी और नये सामन्तों की सृष्टि होती गयी।

मुगल शासन काल में मेवाड़ के महाराजाओं को छोड़कर यह बचे हुए राजपूत राजा स्वयं मुगल सम्राटों के मंसबदार अर्थात् सामन्त बन गए थे और अपने सामन्तों के साथ उनकी सैनिक सेवा या चाकरी में रहते थे। मुगल बादशाहों ने राजपूत नरेशों को अपना मंसबदार बनाकर सैनिक सेवा के आधार पर जिस सामन्त प्रथा को जन्म दिया राजपूत नरेशों ने उसी प्रथा को अपने राज्यों में अपना लिया। प्रत्येक सामन्त को अपने स्वामी नरेशों द्वारा निर्धारित संख्या में अश्वारोही तथा पैदल सैनिक रखने पड़ते थे और अपने राजा की आज्ञानुसार वे अपनी जमियत (सेना) के सहित राजा की चाकरी में उपस्थित होते थे। उनकी जमियत के व्यय के लिए ही उन्हें जागीरें दी जाती थीं। जिस सामन्त को जितनी अधिक संख्या में सेना या जमियत रखनी पड़ती थी, उतनी ही बड़ी उसकी जागीर होती थी और उसके अधिकार और प्रतिष्ठा उसी के अनुपात में निश्चित थे। इन जागीरों के बल पर ही राजा युद्ध करते थे और उनकी स्वयं की प्रतिष्ठा और सैन्यबल इन्हीं जागीरदारों पर निर्भर होते थे। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही था कि इन सामन्तों या जागीरदारों का प्रभाव और शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती। यही कारण था कि राजस्थान के विभिन्न राज्यों में राज्यों की आधे से अधिक भूमि जागीरदारों के अधिकार में थी।

तत्कालीन राजपूताने की तीन बड़ी रियासतों अर्थात् जोधपुर, उदयपुर और जयपुर में क्रमशः राज्य की समस्त भूमि की 60%,

70%, 50% भूमि जागीरों में बंटी हुई थी। अन्य राज्यों की स्थिति भी लगभग यही थी। इसी से राजपूताने के राज्यों में जागीरदारों के महत्त्व और प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है।

मेवाड़ में सामन्त प्रथा

मेवाड़ को अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए दिल्ली के बादशाहों से निरन्तर युद्ध करना पड़ता था। खिलजी से लेकर औरंगजेब तक कई बार मेवाड़ को रक्तस्नान करना पड़ा। अतएव ऐतिहासिक कारणों से मेवाड़ में सामन्तों का महत्त्व और शक्ति भी बढ़ गयी। मेवाड़ के महाराज अपने जागीरदारों के भरोसे ही दिल्ली के बादशाहों को चुनौती देते थे। परिणामस्वरूप मेवाड़ में सैनिक सेवाओं के आधार पर एक अत्यन्त प्रभावशाली और शक्तिशाली वर्ग उत्पन्न हो गया।

मेवाड़ में प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणी के बहुसंख्यक सरदार थे और प्रथम और द्वितीय श्रेणी के सामन्त अपनी जागीरों में अर्द्धस्वतन्त्र शासक के रूप में आचरण और व्यवहार करते थे। जब तक मेवाड़ को दिल्ली के बादशाह से और उनके पतन के बाद मराठों तथा अन्य राज्यों से युद्ध करना पड़ता था, तब तक महाराणा और उनके सरदारों के बीच बहुत अच्छे सम्बन्ध रहते थे, तथा महाराणा और उसकी खालसे की प्रजा के साथ भी अच्छे सम्बन्ध रहते क्योंकि महाराणा को अपने जागीरदारों और खालसे की प्रजा के ऊपर ही युद्धों में सहायता के लिए निर्भर रहना पड़ता था। इसी प्रकार जागीरदारों को अपनी जागीर की प्रजा की सहायता पर आश्रित रहना पड़ता था। प्रजा जानती थी कि मराठों या मुसलमानों से वे ही उसकी रक्षा करेंगे। इसलिए संकट के समय प्रजा धन-जन से अपने जागीरदारों की सहायता करती थी और जागीरदार भी प्रजा के प्रति अत्यन्त स्नेहपूर्ण व्यवहार करता था क्योंकि वह उन पर आश्रित था। जब शत्रु आक्रमण करते तो प्रजा के बल पर ही वे उनका सामना कर सकते थे। यही कारण था कि तब महाराजाओं और जागीरदारों के बीच तथा महाराजाओं और खालसे की प्रजा के बीच तथा जागीर-

दारों और उनकी प्रजा के बीच बहुत अच्छे सम्बन्ध थे, क्योंकि वे एक-दूसरे पर आश्रित थे। परन्तु खालसे की भूमि भी अपने सम्बन्धियों तथा कुल के लोगों को दी जाती थी बाकी जनता उनके सेवक या बंटाईदार होते थे।

ब्रिटिश शासन में स्थिति बदल गई

जब भारत में ब्रिटिश सत्ता स्थापित हो गई और एक के बाद सभी राज्यों से उनकी संधियां हो गईं। तो युद्ध की आवश्यकता नहीं रही। अब न तो मराठों और न पिंडारियों का भय रहा और न यह भय रहा कि एक राज्य दूसरे राज्य पर आक्रमण करेगा। सभी राज्य ब्रिटिश शासन के अधीन हो गए।

अब राजाओं के लिए जागीरदारों का कोई महत्त्व नहीं रहा और न उनकी आवश्यकता रही; परन्तु चतुर ब्रिटिश शासकों ने जागीरदारों को बनाये रखा। उनके अधिकारों को कम नहीं होने दिया। कारण यह था कि वे नहीं चाहते थे कि राजा लोग अपने राज्यों में एकमात्र शक्ति के स्रोत बन जायें। एक विदेशी साम्राज्यवादी शक्ति इन राजाओं को अधिक शक्तिशाली नहीं होने देना चाहती थी। वह देशी राज्यों में शक्ति-सन्तुलन कायम रखने के लिए जागीरदारों को बनाए रखना चाहती थी। यद्यपि जागीरदारों की संख्या की उपयोगिता समाप्त हो चुकी थी, परन्तु उनके अधिकार और जागीर सुरक्षित रहे। ब्रिटिश शासक की नोति के कारण राजाओं और उनके सरदारों के पारस्परिक सम्बन्ध यथास्थित रहे परन्तु प्रजा की स्थिति में बहुत परिवर्तन आ गया। युद्धों का खतरा समाप्त हो गया था। ब्रिटिश सरकार की संधियों के फलस्वरूप राजाओं के राज्य और जागीरदारों की जागीरें सुरक्षित हो गई थीं। राजा और जागीरदार विलासी और निष्क्रिय हो गए। वे प्रजा पर मनमाने कर लगाते। बेगार तथा लगान लेकर वे प्रजा का दोहन करने लगे। राजाओं के साधन अधिक थे, अतएव वे अपनी विलासिता और वैभव के लिए जागीरदारों की अपेक्षा कम शोषण करते थे। जागीरों की प्रजा की दशा खालसे की प्रजा से भी अधिक दयनीय हो उठी। वह जागीरदारों के भयंकर

शोषण और अत्याचार की शिकार हुई।

सामन्तवादी युग और प्रजा का शोषण

लागतों और बेगारों का इतिहास

बेगार की प्रथा पुराने समय से देश में प्रचलित थी। राज्य का कार्य समस्त राज्य का कार्य है, यह मानकर स्वेच्छा से प्रत्येक नागरिक करता था। जब बेगार का प्रादुर्भाव हुआ तो उस समय शासकों और प्रजाजनों में सद्भावना, सहयोग और पारस्परिक सहायता करने की भावना अत्यन्त बलवती थी। शासक और शासित एक बड़े परिवार के रूप में संगठित थे। जहां प्रजा के कर्त्तव्य परम्परा द्वारा निर्धारित थे, वहां राजा या जागीरदार के कर्त्तव्य भी समाज द्वारा निर्धारित कर दिये गये थे। राजा या जागीरदार भी उन परम्परागत रस्म और रिवाजों की अवहेलना नहीं कर सकता था। उस समय द्रव्य या मुद्रा का चलन नहीं था, अथवा बहुत सीमित था। राज्य की शान्ति व्यवस्था रखने तथा बाहरी शत्रुओं से प्रदेश की रक्षा करने के लिए सेना तथा शासन की व्यवस्था करनी पड़ती थी। किसी तरह का कोई कर नहीं था। यह परम्परा से ही निर्धारित कर दिया गया था कि प्रत्येक नागरिक अपनी शक्ति, सामर्थ्य और आर्थिक योग्यता के अनुसार सेवा अथवा वस्तु में, राज्य-व्यवस्था चलाने को तथा सेना आदि के खर्चे के लिए उचित राशि राज्य को देता था।

वस्तुत: बेगार असाधारण परिस्थितियों में ही ली जाती थी। उदाहरण के लिए, जब युद्ध होते थे, उस समय देश की सुरक्षा के लिए राज्य को प्रजानजन सहायता के रूप में विशेष रूप में बेगार देते थे। युद्ध-काल में, युद्ध के उपरांत पुर्ननिर्माण के काल में अथवा अकाल पड़ जाने पर या इसी प्रकार की अन्य विपत्ति आने पर राज्य को बेगार लेने का अधिकार था। प्रजा संकट के समय सहर्ष बेगार करती थी। परंतु यह कार्य स्वेच्छा से होता था। राज्यों को विपत्ति के समय सहायता देना प्रजा का नैतिक कर्त्तव्य था। मेवाड़ चूंकि निरंतर अपनी स्वतंत्रता के लिए दिल्ली के बादशाहों से दीर्घकाल तक संघर्ष करता रहा,

इसलिए, वहां यह कार्य बहुधा जनता करती रही थी। कालांतर में यह एक परंपरा बन गई और खालसा (महाराणा द्वारा शासित प्रदेश, जो उसके अधिकार में होता था) और जागीरी ठिकानों में उसने बाधित सेवा का रूप ले लिया और वह अनिवार्य बन गई। यही कारण था कि मेवाड़ के खालसा प्रदेश में भी बेगार की प्रथा थी। जागीरों में तो बेगारों की संख्या खालसा से बहुत अधिक थी।

बेगारों के प्रादुर्भाव का एक और कारण था। जब राजस्थान में इन जागीरदारों का उदय हुआ, उस समय मुद्रा का चलन लगभग नहीं था। वस्तु-विनिमय होता था। नाई, धोबी, कुम्हार, खाती, लुहार इत्यादि को किसान वर्ष में खेती की पैदावार, अनाज की एक नियमित राशि दे देता था और वे उसकी वर्ष-भर सेवा करते थे। जहां तक ज़मींदार का प्रश्न था, वह इन सेवाकर्मियों तथा कुटीर उद्योगों में लगे हाथ-कारीगरों को कुछ भूमि दे देता था, उसकी कोई लगान या मालगुजारी नहीं लेता था। और वे उसके बदले उसकी सेवा करते थे या आवश्यक वस्तुएं पहुंचाते थे। परंतु कालांतर में जागीदारों ने प्रत्येक मनुष्य से मालगुजारी लेनी आरंभ कर दी और साथ ही परंपरागत मुफ्त सेवा भी लेने लगे। जो भी उनकी जागीर में रहता और खेती या अन्य पेशा करता, उसको यह परंपरागत बेगार देनी पड़ती थी। किस व्यक्ति से कौन-सी बेगार ली जाय, यह जाति के आधार पर निश्चित कर लिया गया था। ब्राह्मण और राजपूत बेगार से मुक्त थे। ब्राह्मण इसलिए बेगार से मुक्त थे, क्योंकि वे पूज्य थे और राजपूत इसलिए, क्योंकि वे शासक जाति के जाति-भाई थे। अन्य सभी जातियों को बेगार देनी पड़ती थी। तत्कालीन समाज-व्यवस्था में, जो जाति सामाजिक दृष्टि से जितनी नीची होती, उस जाति के लोगों को उतनी ही अधिक बेगार देनी पड़ती थी।

स्थायी लागतों का जातिवार ब्योरा

यह हम पहले ही कह आये हैं कि खालसा और जागीर दोनों में ही बेगार प्रथा प्रचलित थी, परंतु खालसा की अपेक्षा जागीरी में

अधिक बेगार थी। खालसा क्षेत्र में बेगार, राज्य का जो भी निम्न कर्मचारी गांव में रहता था, वह लेता था और जागीरों में जागीरदार तथा उसके परिवार के लोगों की बेगार करनी पड़ती थी तथा गांवों में जो ठिकाने के कर्मचारी रहते थे, उनकी बेगार करनी पड़ती थी। विभिन्न जातियों की बेगारी की शक्ल कुछ इस प्रकार थी—

चमार (भावी) : प्रत्येक गांव में एक चमार रहता था जो गांव में स्थायी रूप से रहने वाले राज-कर्मचारी अथवा जागीर-कर्मचारी का अवैतनिक सेवक होता था। लोगों को बुलाने, किसको कितनी बेगार देनी है—और इसका हिसाब रखने, बेगार देने के लिए उन्हें बुलाने, पशुओं के लिए चारा लाने, प्रत्येक चमार को आवश्यकता पड़ने पर गांव से दूसरे गांव में बोझा ले जाने, लकड़ी चीरने और ठिकानों या सरकारी मकानों को वर्ष में दो बार लीपने के लिए इन्हें पकड़ा जाता था। जिस गांव में भील न हों, वहां पत्रवाहक का काम भी इन्हीं से लिया जाता था। यह बेगार तो खालसा क्षेत्र में भी ली जाती थी। जंगल से जब घास कटती तो घास की बेगार लगाना, खत्तियों और तहखातों में पड़े अनाज को धूप में सुखाकर वापस भरना, घोड़ों का दाना दलना, पेटियां बर्दार ठिकाने के नौकरों के जूते बनाना और उनकी मरम्मत करना, ठिकाने के घोड़ों के लिए चारा काटकर लाना—यह सब-कुछ बेगारी में था।

कुम्हार : खालसे के क्षेत्र में गांव के निम्न राज-कर्मचारी तथा दौरे पर आये अफसरों के लिए मिट्टी के बर्तन देते थे तथा पानी भरते थे। ठिकानों में इस बेगार के अतिरिक्त जो खालसे में ली जाती थी, ठिकाने के मकानों के लिए केल (खपरैल) देना पड़ता था।

नाई : खालसे में गांव के राज-कर्मचारी के यहां हजामत बनाना, कपड़ा धोना, बर्तन मांजना, झाड़ू देना, स्नान कराना तथा मालिश करनी पड़ती थी। ठिकाने में जागीरदार के यहां बारी-बारी से एक परिवार सेवा में रहता था। उनकी औरत रनिवास में मालिश करना, बाल धोना, जागीरदारों की स्त्रियों को स्नान कराने तथा मसाला पीसने का काम करती थी।

माली : इनसे सब्जी और फूल आदि मुफ्त बेगार में लिए जाते थे।

दर्जी : उन्हें कपड़ों की मरम्मत मुफ्त करनी पड़ती थी। जागीर में एक पखवाड़े में उन्हें ठिकाने का काम एक दिन मुफ्त काम करना पड़ता था।

बढ़ई : (सुथार) सुंथारों या बढ़इयों से बेगार केवल ठिकानों में ली जाती थी। उन्हें ठिकाने के लकड़ी के सामान की मरम्मत करनी पड़ती थी।

सरगरा : सरगरा जाति के लोग सरकारी घोड़ों की सेवा करने तथा लोगों (आसामियों) को बुलाने की बेगार देते थे। ठिकानों में ठिकानों की घुड़सालों में बारी-बारी से उन्हें सेवा देनी होती थी।

ढोली : जागीरों में ढोलियों को जागीरदार की सवारी के पीछे गाते हुए चलना पड़ता था। पुरुषों से पत्रवाहक तथा घोड़ों का भी काम कराया जाता था।

भील : भीलों को एक जगह से दूसरी जगह तक सामान ले जाने तथा पत्रवाहक की बेगार खालसा और ठिकानों दोनों में ही देनी पड़ती थी।

महाजन : खालसे में जहां मोदी नहीं होता, अफसरों के दौरे के समय चारपाई, बिस्तर और बर्तन देने पड़ते थे। वहां महाजन को सरकारी कर्मचारी की चिट्ठी पर भोजन-सामग्री बाजार-भाव से (सरकारी भाव से) कम पर देनी पड़ती थी। ठिकाने पर भी उसे यह बेगार देनी पड़ती थी।

साधारण कृषक : सबसे अधिक बेगार किसान को देनी पड़ती थी। खालसे में अधिकारियों के दौरे पर इंधन, दूध, दही, अफसर के घोड़ों या ऊंटों के लिए चारा देना तथा स्त्रियों से आटा पिसवाना, यह स्थायी बेगार थी। परंतु यदि उस गांव में मोदी या महाजन न हो तो सरकारी अफसर की चिट्ठी पर, सरकारी भाव से आटा, दाल इत्यादि भोजन-सामग्री भी उधार लेनी होती थी। कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर किसानों को ऊंट और बैलगाड़ी भी देनी पड़ती थी।

दरबार के शिकार में अथवा रेजीडेंट ए० डी० जी० तथा अन्य बड़े अंग्रेज अफसरों के शिकार के दौरे में रास्तों की सफाई, रास्तों की

मरम्मत तथा उनके शिविर में किसानों को सभी प्रकार की बेगार देनी पड़ती थी। यदि दुर्भाग्यवश कभी वायसराय का दौरा हो तो उन लोगों को जलती मशाल लेकर रात्रि में उस मार्ग के तार के खंभों पर खड़े रहना पड़ता था।

ठिकानों में इन बेगारों के अतिरिक्त जो कि खालसे में ली जाती थीं, किसानों को ठिकाने के घोड़ों के लिए हरा चारा देना पड़ता था। जागीरदार के यहां श्राद्ध अथवा मृत्यु भोजन (मासर) के समय घी-दूध बिना मूल्य देना पड़ता था। साधारण यात्रा के लिए भी उनकी बैलगाड़ियां और बैल बेगार में पकड़ लिए जाते थे। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उस समय ठिकाने का प्रत्येक कार्य बेगार में होता था और जो कार्य अन्य बेगारी नहीं करते थे, वह किसान के ज़िम्मे पड़ता था।[1]

अतः उपरोक्त बेगार मुफ्त में जनता से ली जाती थी। मुस्लिम सुलतानों ने स्थान-स्थान पर अपने कारिन्दे, मुंशी, फौजदार, ताल्लुकेदार तथा सामंत बैठा रखे थे। वह जनता की भलाई न करके केवल अपने और मालिक के प्रति वफादार होकर जनता का शोषण जी भर-कर करते थे। अतः गांव की जनता, जिसमें किसान, मजदूर और शिल्पकार लोग होते थे इन अत्याचारों से पीड़ित होकर समय-समय पर क्रांति करती थी। शाहंशाह, सामन्त और राजा लोग इन क्रांतिकारियों को, देशद्रोही, चोर, लुटेरे कहकर अमानुषिक अत्याचार करते थे। कहीं-कहीं तो उन पर नये-नये ढंग के टैक्स और कर लगाये जाते थे। राजस्थान के सभी राज्यों में जब कोई नया जागीरदार गद्दी पर बैठता था, तो 'तलवार बंधाई' नाम से नया टैक्स हर किसान और मजदूर को देना पड़ता था। अलग-अलग राज्यों में इस तलवार बंधाई को भिन्न-भिन्न नामों से भी पुकारा जाता था। कहीं इसे नजराना और कहीं हुक्मनामा कहा जाता था। किसानों की पैदावार अर्थात् पकने पर फसल का कुता (तकमीना) किया जाता था। कपास,

1. अर्जुन : 'रियासत अंक' (देशी राज्यों में बेगार), ले० श्री व्यास। विजय सिंह पथिक का बयान, माणिक लाल वर्मा के संस्मरण।

गन्ना और अफीम की फ़सलों पर नकदी 2 आना या 3 आना प्रति रुपया से लेकर 8 आना तक लिया जाता था। अगर किसी सामन्त, जमींदार या मनसबदार के यहां कोई उत्सव, विवाह या बच्चा पैदा होता था तो उसका सारा खर्च भी ग्रामवासियों को ही भुगतान पड़ता था। यह सिलसिला मुगलकाल से लेकर अंग्रेज काल तक चलता रहा। किसी क्षेत्र में कम और किसी क्षेत्र में ज्यादा। सामन्त और जागीरदार इतने पर भी सन्तोष नहीं करते थे। कहीं-कहीं पर तो 'चंवरी' नाम से कर लगाया जाता था। जिसके द्वारा एक पिता को अपनी कन्या के विवाह में कुछ नकदी भेंट अपने सामन्त को देनी पड़ती थी। साथ ही कन्या और उसके होने वाले पति को महलों में जाकर फौजदार या रावसाहब के सामने नतमस्तक होना पड़ता था, तब कहीं बारात विदा होती थी। कुल मिलाकर, जनता जागीरदारों और सामन्तों की सम्पत्ति थी।

अतः जनता, जिसमें अधिकांश कृषक-वर्ग होता था, मौका मिलते ही अपने क्षेत्र में क्रान्ति कर देती थी। उस काल में व्यापारी और महाजन, जो स्वयं किसानों के शोषक होते थे, जागीरदारों से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखते थे। मगर गांव में रहने वाले किसान और मजदूर 'गुलाम' की अवस्था में रहते थे।

किसानों के संघर्ष के बारे में ज्यादा विस्तार से अगले अध्याय में लिखा गया है। समय-समय पर किसानों ने जो संघर्ष किये, वे सफलता और असफलता में बदलते रहे। कुछ विद्वान यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि भूतकाल में भी किसान संघर्ष हुए हैं। उनकी शंका ठीक भी हो सकती है। क्योंकि कुछ किसान नेताओं ने किसानों की सहायता से क्रान्ति करके भले ही अपने को एक सामन्त के रूप में स्थापित किया हो परन्तु क्रान्ति के आरम्भ में उनका ध्येय पीड़ित किसान को सामन्तों के चंगुल से छुड़ाना मात्र ही था। फौजदारों और साम्राज्यवादी शक्तियों के शोषण से बचाकर दासता से मुक्त कराना ही था। अन्त में चाहे व्यक्तिगत प्रलोभन ने उन्हें घसीट लिया हो। परन्तु ऐसी मिसालें कम ही पाई जाती हैं।

मुस्लिम काल में किसान संघर्ष और उसका इतिहास

भारतीय किसानों की उन जुटों को जो भारत के प्रहरी के रूप से तथा कृषक संगठन के रूप में समय-समय पर प्रकट हुए, उनकी जाटों, यूरोप के प्राचीन गाथ, गेटी, मेसेगेंटी (महान जाट), जथरा स्यूची, यूचि, यति, जरित्का आदि जातियों से सम्बन्धित होने की कल्पना की गयी है। लेकिन मुस्लिम विद्वानों ने इन संगठनों के चरित्र और कार्य-कुशलता को धूमिल किया, जिसका विस्तारपूर्वक उल्लेख पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। इन कृषक संघों को, जो खापों, गोत्रों और वंशों पर संगठित थे, अंग्रेजों और मुस्लिम शासकों द्वारा जात-पांत का द्वेष फैलाकर तोड़ने का प्रयत्न किया गया।

सन् 1026 में इन जुटों ने सुलतान से टक्कर ली। भयंकर मुठा भेड़ के बाद उनको परस्त होना पड़ा और हाथ पड़ने वाले परिवारों को तलवार से मौत के घाट उतार दिया गया।[1]

हसन निजामी के अनुसार हरियाणा और रोहतक के जाटवान क्षेत्र ने संगठित होकर 1192 ई० में कुतुबुद्दीन के साथ इस बागड़ क्षेत्र में हासी के पास स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी। लेखक के अनुसार

1. फरिश्ता, भा 1, पृ० 82; तबकाते अकबरी, पृ० 16; अलबदायुनी, भाग पृ० 29।

लोहे के पहाड़ों की भांति सेनाओं ने एक-दूसरे पर आक्रमण किया, युद्ध-भूमि वीरों की रक्तधारा और नरमुंडों से बहुरंगी पुष्पों की भांति दमक उठी।" 18 नवम्बर 1338 ई० को टोहाना में, 'तुजुके तैमूरी' (डाउनस भाग 3, पृ० 428) के अनुसार तैमूर लंग से टक्कर ली। इन झगड़ों का कारण केवल कृषक वर्ग का शोषण ही था, गद्दी के लिए लड़ाई नहीं थी।

1330 ई० में सुल्तान मोहम्मद बिन तुगलक ने किसानों पर लगान बढ़ा दिया, अत्याचार किये और उन्हें सताया। लगान वसूल करने को अत्याचारी मुसलमान फौजदारों की नियुक्ति की गई। जालिम फौजदारों के अमानवीय अत्याचारों का सामना करने तथा धर्म की रक्षा करने के लिए पटियाला जिले (समाना और सुनाम) के आस-पास के किसानों के संघों ने, जिसमें मीण, राजपूत, भाटी, जाट तथा अन्य समुदायों के लोग भी थे, उपद्रव खड़े कर दिए। सुलतान ने इन कृषक संघों को कुचलने के लिए फौजी ताकत का प्रयोग किया तथा विशाल सेना ने इन कृषक मंडलों को कुचल दिया। साधारण किसानों अथवा संघों को लाचार होकर अपनी-अपनी उपजाऊ भूमियों को छोड़कर इधर-उधर शरण लेनी पड़ी।[1]

सन् 1525 ई० में पंजाब में सम्राट बाबर ने इन कृषक संघों को नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। वह स्वयं 29 दिसम्बर 1525 ई० को अपने संस्मरणों में लिखता है कि "यदि कोई हिन्दुस्तान जाए तो उन्हें असंख्य घुमक्कड़ जत्थों के रूप में जाट और गूजर पहाड़ी तथा मैदानी इलाकों में बैल और भैंस लूटने के लिए भीड़ मचाते मिलेंगे। वह अभोगे (नालायक) बड़े ही मूर्ख और निष्ठुर होते हैं। मैंने उनकी खोज कराई और दो-तीन व्यक्तियों के विषय में मैंने आदेश दिया कि उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाए।"

अब्बास सरवानी कृत 'तारीखे शेरशाही' (पृ० 117-18) में लिखा है कि "शेरशाह सूरी के गद्दी पर बैठते ही भारत में भारी उथल-पुथल हुई है। अनेक प्रान्तों में फौजदार अथवा किलेदारों ने

1. जियाउद्दीन बरनी कृत 'तारीखे फिरोजशाही', ई० तथा डा० भाग 3, पृ० 245।

स्वाधीन मनोवृत्ति अपनाई। मुलतान और इसके सीमावर्ती जाट परिवारों ने 'कोकाबुंला' के लुटेरे सरदार फतहखां को अपना सरदार बनाकर तथा बलूची सरदारों की सहायता लेकर अनेक उपद्रव रावी सतलज के मध्यवर्ती इलाकों में किए। उन्हें बड़ी तत्परता से हैबतखां द्वारा दबाया गया तथा उसे 'आजमे हुमायूं' के खिताब से पुरस्कृत किया गया। सन् 1628-60 ई० तक शाहजहां के शासन में भी किसानों के विद्रोह होते रहे।

'जाटों का नवीन इतिहास' के लेखक श्री उपेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार सम्राट जहांगीर की मृत्यु के बाद 1927 ई० के समय उत्तराधिकारी संघर्ष मुगल साम्राज्य में जोर पकड़ गया। इस अराजकता का लाभ उठाकर राजधानी अकबराबाद के आस-पास के मजदूर किसानों ने स्वभावत: शाही राजस्व रोककर स्थान-स्थान पर क्षेत्रीय संगठनों का संगठन किया। इनमें भारतीयत्व, स्वाधीनता तथा क्षेत्रीय स्वराज की प्रबल भावना जाग्रत हो उठी। सन् 1627 ई० में महावन मुहाल के जाट मजदूर किसान संगठित होकर इधर-उधर लूटमार करने लगे। सम्राट शाहजहां ने 4 फरवरी 1628 ई० के बाद कासिम खां किजवीनी तथा राजा जयसिंह कछवाहा को इस महावन के विद्रोह को दबाने के लिए भेजा तथा इस संयुक्त अभियान से किसान विद्रोह शान्त हो गया।[1]

1633 ई० के अन्तिम चरण में शाहजहां ने खालसा विभाग की लगभग 7/10 भूमि नवीन मनसबदारों अथवा जमींदारों को दे दी। इससे भूराजस्व में अवश्य बढ़ोतरी हुई परन्तु जागीरदारों द्वारा अधिक लगान की मांग, विभिन्न प्रकार के नवीन करों की वसूली और अत्याचारों के कारण काश्तकारों का पुराना स्वाभिमान जाग उठा। सन् 1635 ई० में जाट मजदूर-किसान तथा अन्य जातियों के काश्तकार जोता संगठित होकर ब्रजमंडल में लूटमार करने लगे। उनमें स्वाधीनता का सिंहनाद गूंज उठा।

प्रारम्भ में शाहजहां ने इन जाट किसानों के स्नेह को जीतने में

1. डॉ० भार्गव, राजस्थान, पृ० 182।

उपेक्षा दिखाई, फलतः मथुरा, आगरा, गोकुल, महावन के काश्तकार मजदूर, मेवात की पहाड़ियों तथा कस्बा खोह मुहाल के मेव, गूजर, राजपूत और जाट परिवार तथा राजपूत काश्तकारों ने लगान या अन्य कर देना रोककर विरोध किया। मुगल साम्राज्य ने इन गरीब लोगों की मांग पर सहानुभूतिपूर्वक विचार न करके उनको दमन द्वारा परास्त करने का सहारा लिया, कुल मिलाकर पता यही चलता है कि मथुरा, महावन, कामा और पहाड़ी क्षेत्र से प्रथम क्रान्ति का सूत्रपात हुआ।

1636 से 38 ई० तक सम्राट शाहजहां ने मुर्शीद कुली खां को इस किसान विद्रोह को दबाने के लिए मथुरा में नियत किया। उसने किसानों पर अमानुषिक अत्याचार किये। भयाक्रान्त कृषक लोग विशाल फौजी नियन्त्रण के कारण उसका विरोध करने में सफल नहीं हो सके। उनका सोया हुआ अभिमान जागृत हो उठा। 'मुआसिलउल उमरा' 6 में खान के अत्याचारों का रोमांचकारी वर्णन मिलता है।

1637-38 ई० में हिंडौन परगना में आबाद जाट, गुज्जर, मीण तथा यादव, राजपूत किसानों आदि पर इस क्रान्ति का प्रभाव पड़ा। उन्होंने लगान रोक लिया, अतः 'जयपुर अखबारात' के अनुसार शाहजहां ने मिर्जा राजा जयसिंह के पास फरमान भेजकर उसे 'हिंडौन मुहाल' की खालसा भूमि का लगान वसूल करने तथा वसूली में अड़चन डालने वाले किसानों तथा खेवट या कृषकों का दमन करने के लिए कूच का आदेश दिया। भीषण प्रयास के बाद किसानों को लगान देना पड़ा। 'मु० उलमरा' के अनुसार 1640 ई० में मिर्जा राजा के नाम एक फरमान और जारी किया गया कि वह विद्रोही किसानों का दमन करके उन्हें मुहाल से बेदखल कर दें। इस प्रकार यह भूखंड किसान क्रान्तिकारियों का अखाड़ा बन गया।

कामा पहाड़ी तथा खोह मुहाल में 1649-50 ई० में रैंरिया सिंह के पौत्र मदु, जिसको महाकवि 'सूदन' ने 'महीपाल' व 'शाह का उरसाल' (शाहजहां के हृदय का कांटा) कहा है, ने क्षेत्रीय डूग तथा पाल सरदार मजदूर किसानों की उन्नति, विकास तथा एकता के लिए अपने चचा 'सिंघा' के नेतृत्व में एक संगठन बनाया (उपेन्द्र नाथ

शर्मा कृत 'जाटों का इतिहास') तथा क्रांतिकारियों की तीव्रता के कारण तथा उनकी एकता और लूटमार के कारण प्रायः शाही मार्ग बन्द हो गये।[1] अतः सम्राट् ने 1650 ई० में मिर्जा राजा जयसिंह के दूसरे पुत्र कीर्तिसिंह को इस विद्रोह को दबाने के लिए भेजा। दोनों ओर से जम कर संघर्ष हुआ। लम्बे संघर्ष के बाद असंख्य मेव, खानजादे, गुज्जर किसान तथा जाट परिवार खेत रहे या बन्दी बना लिये गये। झुंड के झुंड काश्तकार अपनी मातृभूमि को छोड़कर भाग गये। उनके बहु-संख्यक पशुओं पर आमेर की सेना का अधिकार हो गया तथा उनकी जगह राजा जयसिंह ने इन परगनों में अपने विश्वासपात्र राजपूत सरदार बसाये।

सन् 1660-95 तक औरंगजेब के काल में भी किसान-विद्रोह होते रहे। 1660-61 अनावृष्टि ने जमींदारों, काश्तकारों तथा मजदूरों की कमर तोड़ दी। उधर चार वर्ष तक चलने वाले शहंशाह के पुत्रों में गद्दी के युद्ध तथा किसानों की क्रान्ति ने औरंगजेब को झकझोर दिया। अतः मथुरा और अलीगढ़ के किसानों ने भी इसका लाभ उठाया और स्वाधीनता आन्दोलन की ओर आकर्षित हुए।

ठेनुजा गोत्री माखनसिंह के प्रपौत्र सरदार नन्दराम ने यमुनापारी किसान कबीलों का नेतृत्व संभाला और परिस्थितियों का लाभ उठा-कर स्वाधीनता का झंडा उठाया। जाट किसानों ने क्रान्ति के समय अपने खाली हल की फालियों का सहारा लेकर औरंगजेब की नींद हराम कर दी। अतः उसने मजबूर होकर किसान सरदार नन्दराम को फौजदार की उपाधि देकर तोछी गढ़ परगना का प्रबन्ध सौंपा। इससे कृषक-वर्ग कुछ समय के लिए शान्त हो गया।

औरंगजेब के धार्मिक अत्याचारों से देश में त्राहि-त्राहि मचने लगी। ब्रजमंडल में जाट जमींदार (किसान 1669 ई०), पंजाब में सिख किसान (सन् 1672-73 ई०) तथा नारनौल में सतनामी किसान (1672 ई० में) इन अत्याचारों के विरुद्ध खड़े हो गये तथा मालवा में भील चक्रसेन (1667 ई०), गोलकुंडा और बीजापुर के शासकों ने किसानों के सहयोग से औरंगजेब के विरुद्ध अपनी तलवार चमकाई।

1. 'मु० उल उमरा', भाग 1, पृ० 120।

वहां दक्षिण भारत में शिवाजी महान के नेतृत्व में किसानों का संगठन बन चुका था। दूसरी ओर ब्रजमंडल के किसानों ने धर्म-रक्षा और मानव-स्वाधीनता का झंडा उठाया जिसे मुगल सरकार तथा समकालीन इतिहासकारों ने विद्रोह की संज्ञा दी तथा भारत के इन सपूतों को चोर, डाकू, लुटेरे कहकर वास्तविकता पर परदा डाला। वास्तव में ये विद्रोह किसान विद्रोह थे, चाहे इनमें धन-दौलत या सत्ता ही क्यों न हाथ आई हो।

आलमगीर की धार्मिक सहिष्णुता रहित भावना ने ब्रजमंडल के अनय गोत्री जाटों, मजदूर और अन्य किसानों को एकता के सूत्र में बांध दिया। अत्याचारों को झेलने की अपेक्षा मृत्यु को वह पसन्द करने लगे। धर्म, अर्थ और राजनीत के त्रिकोण से दिल्ली के आस-पास किसान आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला।[1] सिनसिनबार गोत्री जाट सरदार गोकुला ने ब्रजमंडल का नेतृत्व संभालकर बीहड़ जंगलों और राजपथों पर विपल्व का गान गाया।

फौजदार नन्दराम तोछीगढ़ का फौजदार बनकर सम्राट के हाथों में बिक चुका था। अतः गोकुला ने गरीब निःसहाय किसान तथा मजदूरों का नेतृत्व संभाला। दिल्ली के दक्षिण-पूर्व में 12 मील पर बसा तिलपत युद्ध सन् 1636 ई० में आलमगीर और किसानों के बीच लड़ा गया। दोनों ओर से जमकर भयंकर युद्ध हुआ। अल्हड़ किसानों ने इस युद्ध में अपनी वीरता दिखाई। अन्त में उन्होंने शक्ति के सामने घुटने टेक दिये। 1970 ई० के प्रथम सप्ताह में राष्ट्र, धर्म और जाति के स्वाभिमानी सरदार गोकुला तथा उदयसिंह को आगरा की कोतवाली के सामने एक ऊंचे चबूतरे पर जंजीरों से बांधकर लाया गया। जल्लादों ने उसके अंग-अंग को काट दिया था।

आलमगीर की असहिष्णु मनोवृत्ति तथा जजिया कर की घोषणा से ब्रजमंडल में आबाद सीसिन वार, सौगंरिया, कुन्तल (खुन्टल) तथा चाहर डूगो के नवयुवक संगठित होकर साहसी सैनिक बन गये।

जून, 1681 ई० में आगरा परगने में लगान सम्बन्धी उपद्रव

1. 'मु० उलउमरा' (ब), पृ० 436 व मनूची, भाग 2, पृ० 325।

आगरा के समीप ग्रामीण किसानों ने रबी की फसल कट जाने के बाद लगान रोककर शक्तिशाली विरोध किया। आलमगीर ने मीर अबुल्हादी असालत खां के पुत्र इब्राहीम हुसेन को आगरा परगने की फौजदारी दी तथा उसकी कमान में शाही सेना को लगान वसूल करने के लिए भेजा। उधर नवयुवक किसानों को अपने पूर्वजों की शान तथा जातीय सम्मान की रक्षा के लिए उठना पड़ा। उन्होंने अदम्य उत्साह, साहस तथा लग्न से शाही सेना का मुकाबला किया और उसे बुरी तरह कुचल कर खदेड़ दिया। किसान सैनिक फौजदार मुलफत-खां को बन्दी बनाकर अपनी गढ़ी में ले गये और उसकी जूतियों से अच्छी तरह मरम्मत की। अन्त में हिजड़ा समझकर उसे मुक्त कर दिया।

कतिपय आधुनिक इतिहासकारों का विचार है कि यमुना नदी के पूर्वांचल तथा दुआब में हुए इस किसान तथा जनता के विद्रोह के पीछे लगान-वृद्धि, आर्थिक विषमता तथा सैनिक बल से कड़ाई के साथ की जाने वाली वसूली और सम्राट औरंगजेब की धार्मिक नीति थी।

सन् 1683-84 में आगरा परगने के चाहर गोत्री जाट किसान सोख-वाडीग के खुंटल किसान, धानिहार गोत्री किसान तथा अन्य कबीलों ने, जिनमें मजदूर भी था, स्वाधीनता के नाम पर संगठित होकर राजाराम तथा राम की चाहर के नेतृत्व में गुरिल्ला टुकड़ियों के साथ आगरा-दिल्ली, आगरा-बयाना तथा ग्वालियर और मालवा को जाने वाले शाही मार्गों पर निडर घूमने लगे। मेवात की पहाड़ियों से चम्बल तक, आमेर राज्य की सीमाओं से मथुरा-आगरा तक सारा भूखंड विद्रोह की ज्वाला से तप्त हो गया। आगरा प्रान्त के सूबेदार तथा फौजदारों को क्रान्तिकारियों की भयंकर लूट का सामना करना पड़ा। अतः फतुहाल-ए-आलमगीरी के अनुसार जाट वीरों की भयंकर लूट तथा आंतक से आगरा सूबे के सारे मार्ग बन्द हो गये। चारों ओर खजाना लूटने वाले दीवानों का काफिला दिखाई पड़ने लगा।

ईसरदास के अनुसार काफिलों को पार करना व्यापारियों की तो क्या मजाल चिड़िया भी नहीं निकल सकती थी। इस क्रान्ति से आलमगीर की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसकी दृष्टि से राजाराम साहसी, वीर

अथवा रणयोद्धा सरदार नहीं था बल्कि (मु० आलमगोरी 1860, 'औरगंजेबनामा के अनुसार') वह अकुलीन जाट, फसादी और काफिर विद्रोही था।

1688 ई० में आलमगोरी ने अपने चचा अमीमर-उल-उमरा शाइस्त खां को आगरे का सूबेदार नियुक्त किया तथा उसके पहुंचने तक मुहम्मद वाका को आगरे का प्रशासनिक अधिकारी नियुक्त करके कड़ाई के साथ प्रबन्ध किया। क्रान्तिकारियों ने नायक सूबेदार मुजफ्फरखां की बिल्कुल भी परवाह नहीं की। किसान लगान वसूली की मांग और वसूली के नियमों से नाराज थे। सिकन्दरा मकबरे का रक्षक मीर अहमद शक्तिहीन था, अतः राजाराम ने अपनी किसान सेना के साथ अकबर महान की समाधि का जा घेरा। गोकुला की दर्दनाक हत्या ने किसान सूरवीरों को प्रतिशोध की भावना से जला रखा था, अतः तैमूर के वंशज अकबर महान की कब्र को खोदकर उसकी हड्डियों को अलग रख दिया तथा मकबरे के सदर द्वारों पर लगे कोसें के फाटकों को तोड़ डाला। दीवार, छत तथा फर्शों पर लगे अमूल्यों तथा चमकीले पत्थर निकाल लिए और सोने तथा चांदी के पत्थरों को निकाला। सोने-चांदी के बर्तन, चिराग, मूल्यवान कालीन, गलीचे आदि तो लूटकर ले गये। अकबर की अस्थियों को भी बाहर निकालकर अग्नि में झोंक दिया। आखिरकार मकबरे के गुम्बदों को तोड़कर ही शान्ति की सांस ली।[1]

सन् 1692 ई० में बयाना तथा हिंडौन में राजपूत तथा जाट किसानों के विद्रोह हुए। वहां पर रणसिंह व श्योसिंह पंवार ने तथा आधुनिक तहसील नदवई के दक्षिण-पश्चिम में हरकिशन चौहान ने गुरिल्ला-युद्ध में पूर्ण सहयोग दिया तथा 1693 ई० में आधुनिक तहसील लक्ष्मणगढ़ के पूर्वी भाग में कान्हा प्रताप सिंह और देवी सिंह नरुका कछवाहा सरदारों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लिया। भुसावर परगने के जाट, आगरा और हिंडौन के पंवार, मडरायल करोली के जादो राजपूतों ने बाणगंगा नदी पार करके हरकिशन

1. मनची, 2/319-218.

चौहान का साथ दिया।[1]

सन् 1694 ई० में महाराज बिशन को, जिसे औरंगजेब ने इस किसान क्रान्ति को दबाने के लिए तैनात किया था, पता चला कि बयाना में किसानों ने विद्रोह कर दिया है। अतः उसने अपनी टुकड़ियों को छजिया गांव के सुन्दरमन गूजर तथा बनवाड़ी गांव के सुक्का जाट सरदारों को दबाने के लिए भेजा। अतः वह टुकड़ी इन किसान सरदारों को बन्दी बनाकर चैंकोरा छावनी में लौटी।

चूड़ामन का संघर्षमय जीवन तथा संगठन-कार्य कुशलतापूर्वक किसानों का नेतृत्व करता रहा। चूड़ामन ने रूपवास, वाडी, बसेडी, सिरमथुरा, बयाना तथा कठूमर के बीहड़ जंगलों तथा पहाड़ों में शरण लेकर नवीन छापामार दल संगठित किये। किसान और मजदूरों की भावनाओं से ओतप्रोत होकर वह क्रान्तिकारियों का पथ-प्रदर्शक बना। कानूनगो के एक लेख के अनुसार इस विद्रोह में उसकी मातृ-भूमि तथा स्वदेश-प्रेम की मूल भावना छिपी थी। फलतः यह विद्रोह न होकर एक सफल आन्दोलन अथवा ब्रजमंडल में सशस्त्र किसान क्रान्ति थी, जिसका नेतृत्व चूड़ामन के हाथ में था। दीर्घ तथा नियमित संघर्ष के बाद उसने मुगल साम्राज्य को बाध्य किया कि ब्रजमंडल के मजदूर किसानों की भावना का आदर करते हुए किसानों को भी राजनीतिक स्तर पर सम्मान प्रदान करे।[2]

सिख, किसान आन्दोलन तथा पंजाब में स्वाधीनता की चिनगारी (सन् 1709-10 ई० से अंग्रेज काल तक)

सरहिन्द और पंजाब सूबा जाट जमींदारों और किसान मजदूरों का प्रमुख गढ़ था। गुरु गोविन्दसिंह ने जाटों और अछूतों को मिलाकर खालसा पंथ बनाया तथा पंजाब में नवीन क्षेत्रीय सम्प्रदाय का सूत्र-पात किया था।[3] परन्तु 17 अक्तूबर सन् 1708 को उन्होंने वीरगति

1. 'ज्य० आखबारात' तथा 'कानूनगो', डिग्गी, पृ० 116-71।
2. राजस्थान का इतिहास, पृ० 22।
3. खफीखां 2/27, इर्विन, 1-81, 82।

प्राप्त की। मृत्यु से पूर्व आपने एक माधवदास पंजाबी को अपना शिष्य बनाया, उसका नाम बन्दा सिंह रखा गया।

बन्दा बैरागी ने चम्बल नदी पार कर जाट प्रदेश (काठेड) में प्रवेश किया, जहां पंजाबियों ने उसकी सेवा की और पंजाब तक पहुंचने के लिए कुछ धन भी दिया। पंजाब में पहुंचकर उसने किसान और मजदूरों की विशाल सेना इकट्ठी की। बन्दा बैरागी ने सरहिन्द के फौजदार नवाब वजीर खां को चप्पडाचीडे के पास बुरी तरह हराया और सरहिन्द को अपने अधिकार में ले लिया।

चूंकि सम्राट बहादुरशाह ने 1707 ई० में चूड़ामन को 1500 जाट 500 सवार का मनसब देकर साम्राज्य की सेवा में भरती कर लिया था, अतः उसे भी सिख अभियान में चलने के लिए आदेश दिया। 25 अक्तूबर 1711 ई० को चूड़ामन की टुकड़ियां भी दिल्ली पहुंच गईं। परन्तु उसने नाम-मात्र के लिए कुछ सेना अपने पास रखकर ज्यादातर सैनिकों तथा किसानों की धार (धाड़) को दिल्ली के पास ही छोड़ दिया।[1] वास्तव में चूड़ामन सिख आन्दोलन से लाभ उठाकर दिल्ली के आस-पास अपना हाथ मजबूत करना चाहता था। अतः लोहागढ़ में दोनों ओर से भयंकर युद्ध हुआ और बन्दा बैरारी बच निकला।[2]

चूड़ामन जाट बड़ा प्रख्यात लुटेरा था। औरंगजेब के समय चूड़ामन के पिता, पितामह, उसके भाइयों ने आगरा और फतहपुर के आस-पास के प्रदेश को लूटकर बरबाद कर दिया था। इन लोगों ने सांसी के दुर्ग का निर्माण करा लिया था। इस दुर्ग को विध्वंस करने और दण्ड देने बेदार बख्त खान और अमीरों की सेना भेजी जब आजमशाह और बहादुरशाह में संघर्ष चल रहा था और जब फर्रुखसियर आगरा के निकट पहुंचा तो चूड़ामन में बड़ा साहस था। उसने शाही सेना को लूट लिया और बहुत-सा शाही कोष छीन लिया। तब उसके विरुद्ध राजा जयसिंह और कुतुब-उल-मुल्क सैयद अब्दुला के चचा खान

1. इर्विन, जिल्द 1, पृ० 106; दीक्षित पृ० 211
2. मुन्तखब-उल-लुबाब, जिल्द 2, पृ० 776।

जहांबहादुर को रवाना किया। परन्तु कई विघ्नों और रसद की कमी के कारण सैयद निष्क्रिय पड़ा रहा। यह संघर्ष एक वर्ष तक चलता रहा। अन्त में दोनों ओर से सन्धि हुई।

वास्तव में किसानों का यह विद्रोह एक क्रान्ति थी। समकालीन दरबारी लेखक तथा वाक्य नवीसों ने राजपूत, मराठा, बुन्देलों तथा सिखों के इन आन्दोलनों को लुटेरों का गिरोह तथा विद्रोही की दृष्टि से आंका। मुस्लिम इतिहासकारों की एकतरफा और धार्मिक पक्षपात ने इन रचनाओं के ऐतिहासिक महत्त्व को आघात पहुंचाया। वह नहीं समझते थे कि युग, देश तथा समाज की आवश्यकताएं क्या हैं ? भारतीय क्रान्तिकारी संगठन क्यों पनपते हैं ?

बन्दा बैरागी के बलिदान के बाद शूरवीर सिक्खों ने किसानों को जीवित रखने के लिए, अत्याचार और शोषण के विरुद्ध 12 जत्थे बनाये, जिन्हें 'मिसिल' के नाम से पुकारा जाता था। उन्होंने स्वतन्त्रता का झंडा उठाया। सन् 1716 में चौ० छज्जाराम सिंह और सरदार भीम सिंह नामक ढिल्लों किसानों के नेतृत्व में इस मिसिल का गठन हुआ था। इन्होंने 15 हजार सिख युवकों की सेना लेकर गुजरात, झंग मुल्तान, स्यालकोट, कसूर, डेराखान आदि जगहों से मुगलों के शासन का अन्त कर दिया। सहारनपुर, चन्दौसी और खुर्जा तक भी आक्रमण किये। मिसिल के 25 हजार सैनिकों ने माता किशोरी के साथ 1765 ई० में दिल्ली पर आक्रमण किया। इन्होंने मुगलों से 'जय जमा' नामक तोप छीन ली। बाद में यह तोप भगी नाम से मशहूर हुई।

कन्हैया मिसिल (किसानों की धाड़) : लाहौर के कान्हा गांव के सिन्धु वंशी किसान चौ० खुशहाली के पुत्र जयसिंह ने इस मिसिल का निर्माण किया। महाराज रणजीत सिंह ने जब अमृतसर पर चढ़ाई की तो इस मिसिल ने घोर युद्ध के साथ उसके आक्रमण को विफल कर दिया। परन्तु महाराजा रणजीत सिंह ने अपने पूरे यौवन के समय इस मिसिल से कांगड़ा, कलानौर, पठानकोट, कोरहा, सुजानपुर, दीनानगर, नूरपुर, हाजीपुर और अटलगढ़ आदि छीन लिये।

नकया मिसिल : इस मिसिल की स्थापना सिन्धु वंशी किसान चौ० हेमराज के पुत्र हरिसिंह ने की। यह 1726 ई० में भडवाल, जिला

लाहौर, में उत्पन्न हुआ था। आठ हजार सवारों के दल ने भडवाल, चूनिया, दयालपुर, कनपुर, जेठपुर, खंडिया, मुस्तफाबाद, शेरगढ़ देव-साल, फिरोजाबाद आदि प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया।

करोडियान (धाड) : बरकियान गांव के किसान नेता सरदार करोड सिंह ने 12 हजार सैनिक मिलाकर नादिरशाह को लूटा। 10 लाख आय के प्रदेशों को मुगलों से छीना। एक समय जालंधर के चारों ओर का प्रदेश इस मिसिल के अधीन हो गया। दुर्रानी के सिपहसालार बुलन्द खां से जब सिक्खों का युद्ध हुआ तो दुर्रानी का कोष सरदार करोड सिंह ने ही लूटा था। उसके बाद जब सरदार बघेलसिंह धारीवाल ने उत्तराधिकार संभाला तो इसने 30 हजार किसान-सवार लेकर सीमा प्रान्त की ओर आक्रमण किया तथा मुस्लिम पठानों की सत्ता समाप्त की। इसके बाद मेरठ, अलीगढ़, बिजनौर, बुलन्दशहर, मुरादाबाद, चन्दौसी, हाथरस, इटावा आदि नगरों के सामन्तों को लूटा तथा नीचा दिखाया। सन् 1781 में स० बघेलसिंह ने 70 हजार सेना लेकर दिल्ली पर आक्रमण किया। उसने जगह-जगह पर आग लगाकर किले पर अधिकार कर लिया, परन्तु गद्दी पर बैठने के बारे में पारस्परिक कलह की वजह से किसान सेना किले से बाहर निकल गयी। इस पर बेगम सिमरु ने शाह आलम से कहकर 3 लाख रुपये और दिल्ली में गुरु तेगबहादुर का गुरुद्वारा बनाने की आज्ञा दिलवाई तथा और अधिक लूटमार न करने पर रजामन्द करके लौटा दिये। सरदार बघेल सिंह ने तेलीवाड़ा (दिल्ली) में माता सुन्दरी और साहब देवी (धर्मपत्नी गुरु गोबिन्द सिंह) की स्मृति में तथा तेगबहादुर की शवभूमि (रकाबगंज) में गुरुद्वारे की नींव रखी।

शाहीदान मिसिल : इसका गठन बन्दा वैरागी के समय में ही हो चुका था। सरदार शाह दीप सिंह इस मिसिल के मुख्य बने, जिन्होंने 1762 ई० में दुर्रानी के साथ अमृतसर के युद्ध में वीरगति पाई। इसके बाद इस मिसिल का नेतृत्व लाहौर के बीर सिंह सिन्धु गोत्री किसान के पुत्र करमसिंह ने किया तथा सीमा प्रान्त के जलालाबाद पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। उसने मुजफ्फरनगर के पठानों का किला जलालाबाद लुहारी तथा सहारनपुर के रणखंडी का प्रदेश

अपने अधिकार में कर लिया।

'मुन्तखब-उल-लुबाब' के लेखक मोहम्मद हासिम खफीखां ने 1519 ई० में बाबर के हमले से मोहम्मद शाह के शासन के 14वें वर्ष तक का इतिहास लिखा है। अपने इतिहास में उसने मराठों, सिक्खों, जाटों और सतनामियों के विद्रोह का विस्तार से वर्णन किया है। उसके अनुसार विपत्ति का हाल सुनकर जो हाल सरहिन्द में गुजर रहा था, जहां वजीर खां मारा गया था और उसकी सेना भाग गई थी, सहारनपुर का फौजदार अली मोहम्मद खां घबरा गया और अपने परिवार सहित दिल्ली भाग गया। जब शत्रुदल (किसानों की मिसिल) आया तो लोगों ने उनका मुकाबला किया। कितने ही नगरवासियों की सम्पत्ति शत्रु के हाथ आई, अनेक स्त्रियों ने यह देखकर कि उनका सम्मान खतरे में है और उन्हें बन्दी बनाया जायेगा, तो वे कुएं में कूद गईं।

लेखक ने आगे लिखा है कि "सहारंगपुर (सहारनपुर) का धन, जवाहरात, सामान लूटकर शत्रुओं ने अपने हाथ में ले लिया तब उन्होंने जलालाबाद के फौजदार के नाम इस विषय में कठोर आदेश रवाना किया। उसका नाम जलाल खां था। यह नगर उसने ही बसाया था और एक दुर्ग भी बनाया था। इलाके में उसकी वीरता की धूम थी। जब इन दुष्टों का पत्र उसको मिला तो उसने पत्रवाहकों का उपहास करवाया और उन्हें वहां से निकाल दिया तथा अपने किले को सुदृढ़ किया। उसने काफिरों का सामना करने के लिए पर्याप्त सेना जुटाई। जब यह खबर आई कि शत्रु तीन-चार कोस के फासले पर है और उसने जलालाबाद के दो ऐसे गांव घेर लिए हैं जो सेठों की सम्पत्ति से भरे पड़े थे, तब उन गांवों की रक्षा के लिए जलाल खां ने अपने पौत्र गुलाम मोहम्मद खां और हिजबार खां के नेतृत्व में 3-4 सौ अफगान सवार, 1 हजार बन्दूकची तथा तीरन्दाज शत्रु का सामना करने के लिए भेजे। लड़ाई तेज होने लगी, हिजबार खां और बहुत से सिपाही मारे गये। फिर जलाल खां के साथ लड़ाई हुई, दो-तीन बार काफिर हार गये परन्तु फिर भी उन्होंने जलालाबाद का घेरा दृढ़तापूर्वक जारी रखा।"

लेखक के अनुसार, "अन्त में सब ओर से चींटियों और टिड्डियों की भांति 79-80 हजार आदमी एकत्रित हो गये। ये लोग अपने साथ तख्तों के बने हुए 2 या 3 मोरचल लाए। इनमें गाड़ियों के पहिये लगे थे। शत्रु ने जलालाबाद को सब ओर से घेर लिया। आक्रमणकारी अपने गांव से निकलकर किले की दीवार तक पहुंच गये और 'फतहदरस' का नारा लगाते हुए उन्होंने तीर और गोलियां चलायीं तथा पत्थर फेंके। चार-पांच सौ आदमियों ने कुदालियों और दूसरे औजारों से किले की प्राचीर को खोदने का प्रयास किया। उन्होंने सीढ़ियां लगाकर दीवारों को फांदने का, दरवाजों को जलाने का भी प्रयत्न किया। पूरे 20 दिन तक घिरे हुए लोगों को न अन्न मिला और न विश्राम। अन्त में काफिरों ने इस घेरे को व्यर्थ समझकर घेरा उठा लिया और जालंधर दोआब को जीतने के लिए चल दिये।

'मुन्तखब-उल-लुबाब' के अनुसार एक सामन्त को घेरने के लिए 70-80 हजार आदमी इकट्ठा हो गये। अतः यह एक शुद्ध क्रान्ति थी जिसमें शामली, झिझाना, बघरा, नानौता तथा थानाभवन के वीर किसानों ने भाग लिया होगा। इस प्रकार धार्मिक जुल्म और शोषण के विरुद्ध और कई मिसिल संगठित होकर स्वतन्त्रता की लड़ाई में कूद पड़ीं, जो इस प्रकार हैं :

(1) **फैजल्लापुरी या सिहुपरिया** : इसे कपूर सिंह नामक वारिकवंशी किसान फैजल्लापुर पर अधिकार करके इसी नाम से इसी मिसिल का नामकरण किया।

(2) **निशानवालिया** : गिल किसानों का समूह अपने आगे खालसा पंथ का निशान लेकर चलता था और इसके संस्थापक में सूरवाल जिला फिरोजपुर के चौ० दसोध सिंह थे। स० दसोध सिंह मेरठ में जाब्ता खास लड़ते हुए शहीद हुए। इनके बाद रणजीत सिंह ने मिसिल को अपनी सेना में मिला लिया।

(3) **अहलूवालिया मिसिल** : अहलू ग्राम में रहने वाले जस्सा सिंह के द्वारा स्थापित की गई।

(4) **रामगढ़िया मिसिल** : इसका संस्थापक जस्सा सिंह बढ़ई (तीरखान) था। उसने अच्छी वीरता का परिचय दिया। जो हथियार

बना सकता है, वह चल भी सकता है। उन्होंने अमृतसर के पास राम-रानी गढ़ को राजधानी बनाया, जो बाद में राजा रणजीतसिंह के राज्य का अंग बन गई।

(5) **डलवालिया** : इस मिसिल को खत्री जाति के श्री गुलाब सिंह ने अपने गांव के नाम पर, जो रावी नदी पर डेरा बाबा नामक स्थान के पास है, बनाया। इस मिसिल को बाद में राजा रणजीतसिंह के राज्य का भाग बनाना पड़ा।

(6) **फलकिया** : इस मिसिल को चौ० फूलसिंह सिन्धू वंश के किसान ने संगठित किया। बाद में इस वंश के वंशजों ने पटियाला, जिन्द और नामा राज्यों की नींव डाली।

(7) **शुकर चकिया मिसिल** : यह एक चन्द्रवंशी जाट सिक्खों का दल था, जिसमें बाद में वीर प्रतापी पुत्र पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह ने जन्म लिया, जिनका इतिहास के पन्नों पर आज भी राजा अनंगपाल के बाद दूसरे स्थान पर है। हिन्दू स्वाधीनता और धार्मिक मर्यादा को पुनरुज्जीवत करने में लगा लिखा गया है। अन्त में यह कहना उचित होगा कि इसमें उत्तर और दक्षिण भारत का—जिसमें मराठे, सिक्ख, सतनामी, बढ़ई, लुहार, खत्री, राजपूत, गुज्जर, मीणा, मेवाड़ अन्यान्य मुस्लिम, जहांगीर, साधारण मजदूर और किसान तथा बुद्धिजीवियों का अटूट और हार्दिक समर्थन प्राप्त था। अधिकांश लड़ाई मुगल-मराठों की धार्मिक मदान्धता, राजनीतिक अत्याचार, आर्थिक उत्पीड़न तथा सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध लड़ी गई। यह एक क्रान्ति थी। चाहे कुछ समय बाद इस क्रान्ति के मुखिया नेताओं या उनके वंशजों ने अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा तथा स्वार्थ के अन्तर्गत अपने-आप को सामन्तों, गद्दीधारी राजाओं की परवरिश में दिखाया हो, परन्तु आरम्भ में यह शक्ति-सम्पन्न सम्राट तथा साम्राज्य के विरुद्ध आन्दोलन था। फलतः प्रभावित लोगों ने इस क्रान्ति को 'जातियों का विद्रोह', 'लुटेरों का गिरोह' आदि नामों से सम्बोधित किया है। परन्तु वह लुटेरे और डाकू नहीं थे अपितु देश-भक्त थे, जिन्होंने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक शोषण के विरुद्ध अपनी जान की बाजी लगाई और इन क्रांतियों में गद्दीदारों, सामन्तों

और जागीदारों ने भाग नहीं लिया। भाग लेने वाले बहुसंख्यक किसान मजदूर थे, जो दृढ़तापूर्वक शोषण का मुकाबला करते रहे। ऐतिहासिक दृष्टि से यह न तो सैनिक क्रान्ति थी और न ही एक गद्दीधारी का दूसरे शासक पर आक्रमण था। यह केवल कृषकों और मजदूरों की क्रान्ति थी, जो कि धाड़ बनाकर अपने शोषण के विरुद्ध संघर्ष करते थे।

सन् १८५७ ई० का गदर और किसान-संघर्ष

1857 ई० के इस विप्लव को किस नाम से पुकारा जाये ? अर्थात् क्या इसे सैनिक विद्रोह मात्र की संज्ञा दी जाये अथवा स्वतन्त्रता का पहला संग्राम कहा जाये ? या फिर इसे किसान आन्दोलन कहा जाये ? इसमें विद्वान् लोग भिन्न-भिन्न मत रखते हैं। जहां तक राजस्थान में घटित घटनाओं का सम्बन्ध है, यह स्पष्ट है कि इस क्रान्ति में भाग लेने वाले नागरिकों की संख्या अत्यन्त सीमित थी। केवल क्रान्तिकारियों का सहयोग कुछ असन्तुष्ट ठाकुर ही कर रहे थे। राजस्थान के सब राजे-महाराजे अंग्रेजों के साथ थे। सामान्य नागरिक स्पष्ट रूप से बिल्कुल अलग रहा। अतः व्यापक समर्थन के अभाव में राजस्थान में जनविद्रोह कहना ठीक नहीं। भारत के अन्य भागों में भी जनसमर्थन के अभाव में इसे सैनिक क्रान्ति कहा जा सकता है। इस क्रान्ति के और भी कई कारण थे, जिनमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सैनिक असन्तोष मुख्य रूप से इकट्ठे होकर एक ही उद्देश्य के लिए अंग्रेजों से लड़े 'कि अंग्रेजो ! फिरंगियो ! भारत छोड़ो।' उन सब के अन्तिम ध्येय में कोई समता नहीं थी। कोई कुछ चाहता था कोई कुछ। बहावी आन्दोलन मुसलमानों का आन्दोलन बना। वह कहते थे कि अगर विदेशियों को समाप्त न किया तो मजहब की कुशलता नहीं।

बहाबियों के कुछ भड़कने से सरहदी जातियों ने अंग्रेजों पर अनेक हमले किये। झांसी की रानी, तात्या टोपे और उत्तरी भारत तथा दक्षिण के कुछ ताल्लुकदार, जिन्हें अंग्रेजों से भय उत्पन्न हो गया था फिर वे मुगल दरबार के कुछ-न-कुछ सम्बन्धी थे, इस संग्राम में सम्मानित हुए। सैनिकों को, जो भारतीय थे, भी कारतूसों की चरबी वाली कहानी ने अंग्रेज के विरुद्ध तूफान मचाने के लिए विवश कर दिया। इसी प्रकार से बंगाल में तीतू मियां के नेतृत्व में आन्दोलन धार्मिक आन्दोलन न रहकर किसान आन्दोलन बन गया। इस विस्फोट से सम्बन्धित ये पांच क्षेत्र मुख्य रूप से थे—दिल्ली, कानपुर, रुहेलखंड, बुन्देलखंड और मेरठ। 10 मई 1857 को मेरठ की सैनिक रेजीमेंट ने खुली बगावत कर दी। देखते-ही-देखते इस बगावत की चिनगारी उत्तरी भारत के गांव-गांव और शहर-शहर में फैल गयी तथा इस क्रान्ति में किसान और मजदूर भी बड़ी बहादुरी से सम्मिलित हो गया और इस क्रान्ति में जमींदार और किसान विरोधी अंग्रेजों के विरुद्ध दूसरे लोगों के साथ मिलकर अपने अरमान निकाले।

सन् 1857 ई० और किसान आन्दोलन

उत्तरी भारत का किसान जमींदारों और महाजनों के शोषण से दुखी था। इसका मुख्य कारण किसानों की बेदखली और जमींदारों द्वारा उनका शोषण था। इस बात को भुलाया नहीं जा सकता कि स्वतन्त्रता संग्राम में कृषक वर्ग के असन्तोष से फायदा उठाकर कुछ धार्मिक प्रवृत्तियां भी इस आन्दोलन में भागीदार बन गयीं। इस प्रकार वह 'माजी माजी आन्दोलन', जो कि इस लड़ाई से पहले एक शांत आन्दोलन था, धार्मिक होते हुए भी कृषक वर्ग की अशान्ति का लाभ उठाकर जनता का संग्राम बना। इलीफी कहता है कि "Maji Maji as a mass movement originated in peasant grievances, was then sanctified and extended by prophetic religion and finally crumbled as crises compelled reliance on fundamental loyalties to kin and tribe."[1]

1. Peasant of Raj; p. 129.

इस आन्दोलन में पीड़ित किसानों को अपना नेतृत्व करने के लिए जो अंग्रेजों के शोषण का उत्तर दे सके, जनता को संगठित कर सके तथा इस स्वतन्त्रता-संग्राम का सुचारु रूप से संचालन कर सके, बड़े-बड़े ताल्लुकदारों और धार्मिक अगुवाओं का सहारा लिया। अतः दिल्ली, कानपुर और लखनऊ जिलों और गंगा-यमुना के दोआब में ग्रामीण किसानों ने इस 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया। कृषक वर्ग के साथ मुसलमान धर्म के नेताओं ने भी, मौलवी लियाकत अली (इलाहाबाद), मौलवी अहमद उल्लाह (फैजाबाद), खान बहादुर खान (रुहेलखंड) आदि लोग सम्मिलित हो गये। किसानों की नाराज़गी और रोष बढ़े हुए थे। उनकी नाराज़गी मुख्य रूप से टैक्सों के प्रति थी। अतः सहारनपुर जिले के पंडीर राजपूत और बटार मुजणें के समूह मेरठ जिले के पश्चिमी भाग के जाट किसान तथा उत्तरी-पूर्वी मथुरा के प्रगतिशील लोग लंढोरा हाउस के राजा तथा अलीगढ़ जिले के जाट राजा मुरसान के नेतृत्व में खड़े हो गये। परीक्षितगढ़ के आसपास का नेतृत्व कदम सिंह नाम के गुज्जर किसान ने किया तो मथुरा जिले में राया खाप का नेतृत्व देवी सिंह ने किया। कृषक वर्ग जहां बढ़ी हुई मालगुजारी और फसलों का उचित मूल्य न मिलने की वजह से रुष्ट था, वहां ग्राम के उस पूंजीपति से, जिसे 'बन्या' कहते थे और वह भूमि का लगान न देने की वजह से किसान के बदले अंग्रेज को पैसा देकर किसान को उसकी भूमि से वंचित कर देता था। इससे किसान दुखी था। 'पीजेंट्स एन राज' पुस्तक के पृष्ठ 159 पर 'Rural revolt in great Rebllion of 1857 in India' शीर्षक में लिखा गया है कि "In most account of the rural uprising of 1857 the monylender whether described as 'Sleek Mahajan, or 'impossive Bania' is as the villian of the piece." अर्थात् महाजन या बनिया सन् 1857 ई० में ग्रामीण अशान्ति के लिए जिम्मेदार थे। अंग्रेज सरकार ने उन्हें मालगुजारी और लगान वसूल करने का ठेका दिया था।

श्री एन० वी० चौधरी अपनी पुस्तक 'सिविल रेबोलियन इन द इंडियन म्यूटनीज' के पृ० 21 पर लिखते हैं कि इन महाजनों ने ग्राम के

किसान और आम आदमी को उसकी थोड़ी-सी जमीन से ही वंचित नहीं किया, बल्कि उसे भारतीय सभ्य समाज से उखाड़ फेंका था। 1857 का गदर इसका ही परिणाम था। ब्रिटिश कानून ने किसानों के उस शोषण में सहायता की। यह बनिया या कोई भी बाहरी सूदखोर जो भूमि को नीलाम लेता था, अंग्रेजी अदालतें उसे ज्यादा-से-ज्यादा सहूलियतें देकर मामूली कर्जे या सूद के बदले किसान की भूमि के सारे हक इस महाजन को दे देती थीं। अतः 1857 ई० के गदर का गहरा संबंध देहाती कर्ज से भी जुड़ा था। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, रोहतक, मथुरा, मेरठ और अलीगढ़ के जिलों में किसानों ने 1857 में केवल भूमि की बेदखली और लगान को आधार बनाकर स्वतंत्रता की लड़ाई में भाग लिया। 'पीजेंट्स एण्ड राज' की तालिका से भली भांति समझ में आ सकता है कि केवल जिला सहारनपुर में सन् 1839 ई० से सन् 1859 तक महाजन लोगों ने गरीब भूमिधर की भूमि किस प्रकार से हस्तगत की। तालिका इस प्रकार है—

नाम परगना	व्यक्तिगत भूमि	अदालत द्वारा	कर्ज में रहन	योग
सहारनपुर	20%	21%	7%	28%
फैजाबाद	17%	7%	18%	42%
हरोरा	13%	17%	9%	39%
नागल	17%	12%	5%	24%
सरसावा	4%	7%	18%	29%
सुलतानपुर	8%	18%	11%	37%
गंगोह	5%	10%	3%	18%

जहां कहीं भी सम्भव हो सका, कृषकों के समूह ने महाजनों और बनिया लोगों के बही खाते, रुक्के, कर्ज सम्बन्धी अन्य कागजों को जलाया और किसानों की दृष्टि सरकारी खजानों तथा उन अदालतों पर भी गई, जिनमें किसानों के शोषण के कागज-पत्र रखे गये। अतः अंग्रेजों ने पूरी शक्ति से महाजन और अपने खजाने को बचाया। एच०

डी० रोबरस्टन, जो 1867 ई० में सहारनपुर जिले के कलक्टर थे, वह भी इसी मत से सहमत थे कि किसानों ने 1857 ई० के गदर में जो भाग लिया वह केवल अंग्रेजों के विरुद्ध ही नहीं था बल्कि वह 'बनिया राज' के भी विरुद्ध विद्रोह था।[1]

अंग्रेज सरकार ने 1854 ई० में इसी विषय में न० डब्लू० प्रान्त (वर्तमान उत्तर-पश्चिमी उ० प्र०) के माल अधिकारियों से स्पष्टीकरण मांगा था, अतः इसी समय के जिला सहारनपुर के कलेक्टर रोज साहब ने सरकार को लिखा था कि "The unjust and fraudulent spoliation thus alleged to be committed through the ready instrumentality of the civil court in the theme of land and constant complaint among the agricultural class."

इन बेदखलियों का प्रभाव मुसलमान गुज्जर, और राजपूत लोगों पर ज्यादा पड़ा क्योंकि इन लोगों की आर्थिक स्थिति निर्बल थी। जिला मु० नगर के महाजनों ने उक्त लोगों की आर्थिक हीनता का किस प्रकार नाजायज फायदा उठाया, जिसको उन्होंने अदालत द्वारा प्राप्त किया, निम्नलिखित तालिका से दर्शाया गया है। तालिका सन् 1841 से 1961 तक इस प्रकार है :

परगना	सन्	जाटों के अधिकार में	महाजन
शामली	1841	70-8%	3-8%
,,	1861	63-7%	11-4%
कांधला	1841	37-1%	8%
,,	1861	34-4%	14-7%
बुढ़ाना	1841	20-7%	1-4%
,,	1961	19-3%	5-0%

1. No class he said "seems to have acted with so vindictive a hatred against us as the smaller class of land holders whom the Banyas had dispossed through the medium of our courts.
—Roberston, District Duties, p. 134-7.

शिकारपुर	1841	54-7%	3-9%
,,	1861	45-8%	13-4%
		सैयदों पर	महाजनों पर
मुजफ्फर नगर	1841	51-0%	21-6%
,,	1861	32-9%	34-7%
भोकरहेडी	1841	49-3	17-8%
,,	1861	20-6 %	39-4%
खतौली	1841	60-0 %	9-5%
,,	1861	24-4 %	22-5%
भूमासम्भलहेडा	1841	76-0%	5-0%
,,	1861	56-0%	24-6 %

इसके अलावा महाजन लोगों के पास कर्ज के बदले में रहन भी थी। जो कुल भूमि का शामली परगने में 16%, कांधला में 17%, बुढ़ाना में 11-4%, शिकारपुर में 25-8%, मु० नगर में 27%, भोकरहेडी 44-2%, खतौली में 47%, और भूमासम्भलहेडा में 50% भूमि महाजन के घर गिरवी रखी थी। अलीगढ़ और मथुरा जिलों के प्राचीन भूमि-पत्रों को देखने से पता चलता है कि इन जिलों में भी साहूकारों-महाजनों ने किसानों की भूमि हस्तगत कर ली थी। परिणाम-स्वरूप सन् 1857 ई० का गदर था। आर० एस० वाईटवे, पृ० 251 पर (मथुरा सर्वे रिपोर्ट) लिखते हैं कि मथुरा जिले के परगना नाहभील के नोहवार और नरवार गोत्र के जाटों में गदर की भावना जागी और उन्होंने इस युद्ध में भाग लिया। इसका कारण केवल उन्होंने एक ही बताया—जमींदारों का हठीलापन और शोषण। वह कहते हैं कि "In the early years of British rule (1809) it was remarked—There is not a mahajan in the pargana and the zamindars are so notoriously refractory that no man of property will become security of them."[1]

1. (Traditional E. 1857, p. 195) (S. R. Report of Mathura, p. 251)

सन् 1857 का गदर केवल अंग्रेज शासकों के विरुद्ध नहीं था। उनके साथ जुड़ी हुई उनकी भूमि-नीति भी थी, जिसके द्वारा वह महाजन लोगों को शोषण करने के लिग प्रेरित करते थे। हेनरी बन्सीटार्ट, स्पेशल कमिश्नर आगरा, 28 अगस्त 1858 ई० की अपनी रिपोर्ट में इसकी पुष्टि करते हैं—"The main cause of rural rebellion was not the hatred of our rule but a summary adjustment by the sward of those feuds which had arisen out of the action of our civil and Ravenue laws an proprietary rights in land."

मैनपुरी एटा और प्रदेश के अन्य जिलों के भूमि रिकार्ड भी यही बतलाते हैं कि सन् 1840 से 1857 ई० तक मैनपुरी जिले में खेती योग्य भूमि का 32% भाग जमींदारों के हाथ में जा चुका था। परिणामस्वरूप दिल्ली के चारों ओर के किसानों ने इस स्वतन्त्रता की लड़ाई में भाग लिया। मेरठ, आगरा और रूहेलखंड के लोगों ने सरकारी दफ्तर जलाये, महाजनों के कागज-पत्र जलाये। बुलन्दशहर जिले में नवाब बलीदार खां मालागढ़ के नेतृत्व में, जो कि दिल्ली के बादशाह का सम्बन्धी था, दादरी, दनकौर सिकन्दराबाद, मेरठ जिले के गाजियाबाद, लोनी, जलालाबाद और डासना के कृषकों ने सियाना अहर, अनूपशहर-रूडिवाई, जावर परगनों के कृषकों ने इस युद्ध में अपने-आप को झोंक दिया। सहारन जिला पुर में देवबन्द, रुड़की, कुनकुरी नुकड, और गंगोह, धाटमपुर, और बुड्ढाखेडा के गूजर और रान्धडों में चौ० फत्ता के नेतृत्व में कुन्डा, लखनौती के कृषकों ने अंग्रेजों और महाजनों के विरुद्ध संघर्ष किये और इस क्रान्ति में सक्रिय भाग लिया।

जिला मुजफ्फरनगर के कृषकों ने इनायत अलीखां के साथ, जो कि थाना भवन के रहने वाले थे, शामली की तहसील पर हरा झंडा लगाया। कांधला, बुढ़ाना, शामली, और शिकारपुर परगनों पर सन् 1830 और 1840 ई० में सर हेनरी इलियट और पलाउडन नाम के अंग्रेजों ने अपनी दोहरी और द्वेषपूर्ण नीति से अन्य परगनों की अपेक्षा ज्यादा मालगुजारी लगा दी थी, अतः इस क्षेत्र के किसानों

2. Traditional Elites in the 1857 Rebellion, p. 196.

ने भी इस द्वेषपूर्ण नीति के विरोधस्वरूप अपने-आपको इस युद्ध में में सम्मिलित किया। पाठकों की सुविधा के लिए भूमि लगान की दर इस प्रकार थी, जो कि समता के नियमों को ताक में रख कर बनाई गई थी :

	रु०	आ०	पाई		रु०	आ०	पाई
कांधला	2	4	7	खतौली	1	11	6
बुढ़ाना	2	3	7	जानसठ	1	4	6
शामली	2	10	0	मु० नगर	1	8	2
शिकारपुर	2	6	7				

इस शोषण के विरुद्ध इन परगनों में सभी कृषकों का एक ही मकसद था अत: सब लोगों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया।

मेरठ जिले के बड़ौत और बरनावा परगने के हजारों कृषकों ने सूरजमल और शाहमल (बिजरोल) के नेतृत्व में दिल्ली मुगल दरबार में रसद पहुंचाई तथा अंग्रेजों को पकड़-पकड़ कर कत्ल किया। वर्तमान हरयाना के किसानों ने जो दिल्ली से लगा हुआ क्षेत्र है, हुलाना ग्राम के गढ़वालों ने जो कि जिले रोहतक का ग्राम है, अपनी गढ़-वाला धाड बनाकर और उत्तरप्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के गढ़वालों के सहयोग से 1857 ई० के गदर में विशेष भाग लिया। सोनीपत के दहिया, करनाल के लाहर तथा गूजर और राजपूत किसानों ने लगान-बेदखली और महाजन के शोषण के विरुद्ध लाठी, तलवार और भाले उठाये। इस प्रकार 1857 ई० का गदर केवल सत्ता के लिए मुगल शासक की सहायता करना नहीं था, बल्कि एक किसान आन्दोलन और संघर्ष भी था जिसमें बिना जात-पांत और भेदभाव तथा बिना धार्मिक द्वेष के उत्तरी भारत के कृषकों ने अंग्रेज सत्ता से लोहा लिया।

जमींदारों और देहाती लोगों में बगावत का लाभ उठाकर और उसमें सम्मिलित होकर महाजन और बनिया लोगों से अपने कर्जे आदि की बहियाँ वापस लीं। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में 1857 ई० का आन्दोलन इतना उग्र नहीं था जितना कुछ विशेष जातियों के विरुद्ध था। (महाजन और बनिया) जब किसानों या अन्य लोगों को यह नजर आया कि दिल्ली की सरकार नहीं गिरेगी तो लोगों ने खजाने की तरफ निगाह लगाई और सरकारी अधिकारी और फौज का मुकाबला किया।[1]

रोबर्ट्सन कहता है कि मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि लोगों के हमले कस्बे और शहरों के ऊपर और सरकारी दफ्तरों के ऊपर महज लूटमार के लिए नहीं बल्कि अंग्रेज हकूमत पर इसलिए थे कि वह बनिया राज्य स्थापित किए हुए थी जो किसानों का खून चूसते थे।[2]

रोबर्ट्सन जिला सहारनपुर के नुक्कुड़ तहसील का वर्णन करते हुए कहता है कि इस कस्बे में आन्दोलन करते हुए लोगों ने कस्बे के बाजार को, बड़े-बड़े मकानों को बर्बाद किया। यह सब कुछ आस-पास

1. The Zamindars and villagers took advantage of the general anarchy to obtain from the Mahajans and Baneahs their books of business and bond debts, etc. It would appear as if the disturbances in the commencement were less directed against Government than against particular people and castes. When the fall of Delhi ceased to be looked upon as imminent, the agricultural communities began to turn their eyes towards the local treasures and did not scruple to oppose themselves to Government officers and troops. (Narrative, paras 7-8, pp. 467-8).
2. Robertson was patently not satisfied with the explanation that the attacks on towns, including the Government offices, were prompted by nothing more than a lust for plunder. To him the attacks were conscious acts of rebellion in which hatred of British rule had developed out of a hatred of the bania ka raj—the rule of the money-lender-trader. (Robertson, District Duties, pp. 134-7.)

के गूजरों और मुसलमानों के सहयोग से हुआ। अर्थात वह लोग महाजन लोगों से इसलिए रुष्ट थे कि उन्हें उनकी भूमियों से कर्जे की वसूली के बदले बेदखल किया जाता था।[1]

रोबर्ट्सन कहता है कि असरदार मुसलमानों ने, जो कि अमहटा और नुकुर के रहने वाले थे, बनिया और महाजन के विरुद्ध गूजरों को इसलिए उकसाया कि वह उनके हिसाब-किताब, रुक्के आदि लूट लें जिससे वह अन्य कोई जुल्म किसान के विरुद्ध न कर सकें। इस काम के लिए बुद्धाखेड़ा ग्राम के चौ० फत्तू ने लोगों को उकसाया।[2]

बनियों से रुक्के और अन्य बही खातों को छीनने के लिए ही भारी और बड़े पैमाने पर नुक्कुड़ तहसील पर आक्रमण किया गया।[3]

1. It would be difficult to express the utter ruin that has fallen upon the Hindoo Banias and Mahajuns at Nukoor. Large brick houses and some of them highly ornamental are in ruins. The Bazaar was all but destroyed. The villains concerned in the loot do not appear to have been satisfied with ordinary mischief, but systematically pulled down the houses. Not a Mahomedan's house was touched. The whole lot of Goojurs in the neighbourhood was concerned in this affair—and the Hindoos declare now as they did at the time that the Mahomedans suggested the attack. (Robertson to Spankie, no. 241, para 11)
2. The influential Muslims of Ambahta and Nakur, Robertson alleged, "had excited the Goojurs generally by hopes of plunder, destruction of banyahs' accounts, bonds, etc., and the more influential amongst them such as 'Futtuah' with the chance of regaining the consequence tradition had assigned them in this part of the country, once the principality of their ancestors." (Indian Ruarl Revolt in 1857, p. 167)
3. The same scenes that had occurred at Nookur had here been re-enacted on a larger scale; the attack having originated from nearly the same motives, viz., plunder and the destruction of banyahs' accounts and bonds. (Indian Rural Revolt in1857, p. 167; Robertson, District Duties, p. 158).

कुछ जगह किसानों ने 1857 ई० के गदर में इसलिए भी भाग लिया कि उन पर महाजन का शिकंजा कम था, उससे ज्यादा मालगुजारी का भारी बोझ उनके ऊपर था। क्योंकि वे साधनहीन और पिछड़े हुए थे तथा मालगुजारी देने में असमर्थ थे जो कि समानता के आधार पर निर्धारित नहीं की जाती थी, जिसको मुजफ्फरनगर की मालगुजारी तालिका में लिखा जा चुका है।[1]

अतः यह कहना ठीक नहीं कि सन 1857 ई० की क्रान्ति सैनिक क्रान्ति थी बल्कि यह किसान क्रान्ति अंग्रेज और महाजन के विरुद्ध थी।

1. All this merely underlines the fact that the principal elements of revolt in 1857 came from castes and areas where the mahajan hold was lightest and the land revenue heaviest More significantly, perhaps, these were the backward, thirsty tracts. (Indian Rural Revolt in 1857, p. 175.

राजस्थान में किसान जागृति

बिजोलिया किसान आन्दोलन

बिजोलिया को अपरमाल भी कहते हैं। वास्तव में अपरमाल तत्कालीन मेवाड़ (उदयपुर) राज्य में और वर्तमान राजस्थान के मेवाड़ जिले में एक ऊंचे पठारी प्रदेश का नाम है। इस क्षेत्र में धाकड, भील, मराड, लुहार, सुथार, सुनार, राव, चारण, राजपूत, वैश्य व ब्राह्मण आदि सभी जातियां रहती थीं। परन्तु प्रधानता धाकड वंश के लोगों की थी और वे केवल खेती ही करते थे। वे कृषि कार्यों में परिश्रमी और कुशल भी होते थे। उनका जातीय संगठन बहुत ही दृढ़, तेजवान और सबल था। मेवाड़ में सामन्त प्रथा थी। बिजोलिया भी मेवाड़ का प्रथम श्रेणी का प्रभावशाली ठिकाना था और उसके राव को दीवानी और फौजदारी के अधिकार प्राप्त थे। इन परिस्थितियों में जागीर की आय केवल राव के निजी रहन-सहन पर ही व्यय होती थी। प्रजा के हित के लिए राव कुछ करे यह आवश्यक नहीं समझा जाता था। ठिकाने का एकमात्र उद्देश्य प्रजा और किसानों का अधिक से अधिक शोषण कर अपने वैभव और विलास के लिए अधिकाधिक आय प्राप्त करना ही हो गया। नये-नये कर और लागतें लगाई जाने लगीं। बड़े पैमाने पर बेगार ली जाने लगी। जब यह अत्याचार और शोषण चरम सीमा पर पहुँच गया, तो किसानों का धैर्य समाप्त हो गया।

किसान विद्रोही हो उठे और उन्होंने शक्तिशाली ठिकानों का विरोध करने का साहस किया।

बिजोलिया ठिकानों में लागतों का इतिहास

यह तो हम पहले ही लिख आये हैं कि जब मराठों ने बिजोलिया पर अधिकार कर लिया था और राव केशवदास ने खेराड प्रदेश में गुढा नामक गाँव में एक मीने के यहाँ विपत्ति के दिन काटे। उस समय बहुत से किसान बिजोलिया के पट्टों को छोड़कर अन्यत्र चले गये थे। जब केशवदास का पुन: अधिकार हो गया तो ठिकाने की स्थिति बहुत खराब थी। उसके पास न तो धन था और न सैनिक बल ही अधिक था। मराठों के दुर्व्यवहार के कारण किसान त्रस्त और दुखी थे। उस समय ठिकाने की स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए राव केशवदास ने किसान से आर्थिक सहायता चाही। किसानों के संघर्ष तक ठिकाने को भी मांग से अधिक देना स्वीकार कर लिया। उस समय भोग (पैदावार का एक निश्चित भाग, जो ठिकाना मालगुजारी के रूप में लेता था) इसके अतिरिक्त बिजोलिया में अन्य कोई कर नहीं थे। उस समय बिजोलिया ठिकाने में केवल पन्द्रह गाँव आबाद थे, खेती की उपज का हिस्सा (भोग) गाँव के पंच मिलकर जितना निश्चित कर देते थे, ठिकाने के कर्मचारी किसान के नाम उतना ही लिख लेते थे। बिजोलिया में कूता की प्रथा प्रचलित थी अर्थात जब फ़सल लगभग तैयार होती तो किसान ठिकाने में यह खबर कर देता कि उसकी फसल का कूता (अनुमान) कर लिया जाये। ठिकाने का कर्मचारी आता और गाँवों के अनुभवी पंचों से सलाह कर किसान की खड़ी फसल का अन्दाज कर लिया जाता और ठिकाने के भाग की उपज कितनी होगी, यह उसी समय निश्चित कर दी जाती थी। किसान फिर स्वतंत्र था, जब चाहे फसल काटे और उसको गाहे। फसल गहाकर जब तैयार हो जाती तो वह निश्चित की हुई राशि ठिकाने में पहुँचा देता था। कहीं लाटा प्रथा भी प्रचलित थी। उस प्रथा में जब किसान समझते कि उनकी फसल काटने योग्य हो गई है तो वह उसकी सूचना ठिकाने को देता। ठिकाना अपना एक आदमी रखवारी के

लिए भेज देता। उसकी देखरेख में ही फसल कटती और गहाई जाती। जब फसल कटकर धान साफ होकर इकट्ठा हो जाता तो ठिकाने के कामदार को खुद सूचित करता और कामदार स्वयं जाता अथवा अपने अधीनस्थ कर्मचारी को भेजता। वह गांव के पंच या पटेल को लेकर किसान का जहां धान इकट्ठा होता वहां जाता और तुलवाकर ठिकाने का भोग ले लेता। कहने का तात्पर्य यह है कि बन्दोबस्त (सेटिलमेंट) होकर मालगुजारी नकदी में लेने की प्रथा नहीं थी। राजस्थान की सभी जागीरों में ये प्रथा भी प्रचलित थी कि उस समय जागीरदारों और किसानों के सम्बन्ध इतने मधुर थे और उनमें इतना अपनापन था कि जब किसान निश्चित पैदावार की राशि (भोग) ठिकाने में जमा कराने जाता और जागीरदार को यह ज्ञात होता कि उस किसान के उस वर्ष लड़के या लड़की का विवाह हुआ है या अन्य कोई व्यय हो गया है तो वे उस वर्ष उससे भोग नहीं लेते। यही नहीं, कुएं खोदने तथा बैल इत्यादि खरीदने के लिए किसानों को ठिकाने से ऋण तथा सहायता मिलती थी।

इस प्रकार किसानों के सहयोग से जब केशवदास ने पुनः बिजोलिया के ठिकाने की स्थिति सम्हाल ली तो ग्वालियर, बूंदी आदि पड़ोसी राज्यों के किसानों को उन्होंने बिजोलिया में बसने के लिए आमंत्रित किया। उन्हें अधिक सुविधायें देने का आश्वासन दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि पड़ोसी राज्यों से बहुत बड़ी संख्या में किसान बिजोलिया के पट्टे में आबाद होने लगे। विक्रम संवत् 1925 तक समस्त अपरमाल अंचल आबाद हो गया और ठिकाने की आर्थिक स्थिति में बहुत सुधार हुआ।

केशवदास के स्वर्गवासी होने के उपरान्त उनके उत्तराधिकारी गोविन्द हुए। उनका अपने बड़े भाई नाथ सिंह से उत्तराधिकार के लिए संघर्ष और युद्ध हुआ। अन्त में गोविन्दराम बिजोलिया के स्वामी हुए। जब सभी प्रकार आक्रमणों का भय जाता रहा और ठिकानों की आर्थिक स्थिति सुधर गई तो किसान जो पहले राव केशवदास के समय में स्वेच्छा से ठिकाने की सहायता के लिए भी भोग से अधिक देते थे उसको उन्होंने बन्द कर दिया। ठिकानों ने किसानों

से उन की उपज का चौथाई भाग लेना आरम्भ कर दिया। किसानों को थोड़ा असन्तोष हुआ क्योंकि वह भोग से कुछ अधिक था। परन्तु वह असन्तोष न तो व्यापक था और न गहरा था। अस्तु राव गोविन्ददास की मृत्यु के समय तक ठिकाने और किसानों के सम्बन्ध अच्छे रहे। किसान संतुष्ट थे।

राव गोविन्ददास का स्वर्गवास वि० सं० 1950 के लगभग हुआ और राव कृष्णदास बिजोलिया के स्वामी हुए। राव कृष्णदास के शासनकाल में ठिकाने की नीति में परिवर्तन आया। किसानों से अधिक से अधिक वसूल करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। किसानों के शोषण की नई नीति को कार्यान्वित करने के लिए पुराने अनुभवी कर्मचारियों को हटा दिया गया। नए अहलकार और कर्मचारी नियुक्त किये गये, जिन्होंने किसानों पर नए-नए कर लगाना आरम्भ कर दिया। यही नहीं, राव केशवदास के समय जो किसान सहायता के रूप में स्वेच्छा से भोग से अधिक देते थे, उनको भी अनिवार्य करों का रूप दे दिया गया।

सबसे पहले किसानों पर 'तलवार बंधाई' का कर लगाया गया। राजस्थान के सभी राज्यों में जागीरदारों को राज्य को यह धनराशि उस समय देनी पड़ती थी जब नया जागीरदार सिंहासन का स्वामी बनता था। उसको विभिन्न राज्यों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता था। मेवाड़ में उसे 'तलवार बंधाई' कहते थे। किसी राज्य में उसे नजराना या हुक्मनामा भी कहा जाता था। परन्तु यह प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी कि जब नया जागीरदार ठिकाने की गद्दी पर बैठता तो उसको एक बड़ी राशि राज्य को देनी होती थी। मेवाड़ में प्रत्येक ठिकाने की तलवार-बन्दी की रकम निर्धारित थी। बिजोलिया ठिकाने को चालीस हजार रुपये तलवार-बन्दी के देने पड़ते थे। बिजोलिया ठिकाने की आर्थिक स्थिति सुधर गई थी। वह आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था। यदि ठिकाना चाहता तो किसानों पर तलवार-बन्दी का कर न लगाता परन्तु किसानों पर तलवार-बन्दी का कर लगाया गया और कड़ाई के साथ वसूल किया। ठिकाना तलवार बंधाई के नाम से, जितनी रकम ठिकाने को देनी पड़ती थी उससे अधिक

वसूल कर लेता था। जब भी जागीरदार की मृत्यु होती और नया जागीरदार ठिकाने का स्वामी बनता, जनता पर यह कर लगाया जाता और 60 हजार रुपये तक वसूल कर लिए जाते।

किसानों का असन्तोष तथा संघर्ष का सूत्रपात

यह हम दूसरे अध्याय में ही लिख आये हैं कि ठिकाने के अत्याचारों से बिजोलिया जागीर की सारी प्रजा और विशेषकर किसान अत्यन्त त्रस्त थे। लागतों के भयंकर बोझ के कारण उनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी। साधारण कृषक के पास भोग तथा लागतों को देने के उपरान्त वर्ष भर के लिए खाने को भी नहीं बचता था। क्रमशः वे महाजनों से ऋण लेकर उनके क्रीतदास बन गये थे। ठिकाने की इस भयंकर शोषण नीति के परिणामस्वरूप बिजोलिया के किसान केवल भयंकर कर्ज के बोझ से नहीं दब गये थे वरन बेगार की अपमानजनक प्रथा उनको पग-पग पर अपमानित और कलंकित कर उनके स्वाभिमान को चोट पहुंचाती थी। किसान को चाहे जैसा महत्त्वपूर्ण पारिवारिक कार्य हो, ठिकाने का सिपाही जब जाहे उसे बेगार के लिए पकड़ कर ले जाता था। लागतों के असहनीय आर्थिक भार तथा बेगारों की अपमानजनक मार के कारण बिजोलिया के किसान अत्यन्त दुखी थे। उनकी मानसिक वेदना और पीड़ा चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। परन्तु ठिकाने का आतंक इतना भयंकर था कि कोई भी अपने मन की उस पीड़ा को व्यक्त करने का साहस नहीं करता था। निःसहाय और निरुपाय किसान निराश होकर आन्तरिक व्यथा को अपने अन्तर में छिपाए उस अत्याचार को सहन कर रहा था।

किसानों का प्रथम संगठित विरोध : संवत् 1954 अर्थात् सन् 1897 ई० में अनायास एक ऐसा अवसर उपस्थित हो गया कि अपरमाल (बिजोलिया) के समस्त किसान एक स्थान पर एकत्रित हुए। बात यह थी कि गिरधरपुरा के श्री गंगाराम धाकड के पिता का स्वर्गवास हुआ। गंगाराम जी ने अपने पिता के मत्यु-भोज में अपरमाल के समस्त किसानों को आमन्त्रित किया था। समस्त अपरमाल के हजारों किसान गिरधरपुरा में मृत्यु-भोज के लिए एकत्रित हुए तो यह स्वाभा-

विक था कि ठिकानों के शोषण और अत्याचार से दुखी किसानों ने अपनी आन्तरिक पीड़ा को एक-दूसरे पर प्रकट किया।[1]

और किसानों का एक प्रतिनिधि-मण्डल उदयपुर रवाना हुआ परन्तु सामन्तशाही के कारिन्दों ने उन्हें राजा से मिलने नहीं दिया। वह वहां पर कई महीने पड़े रहे। अन्त में 6 या 7 महीने के बाद उन्हें राणा से मिलने का अवसर मिला। तब राणा ने महकमा खास द्वारा असिस्टैन्ट माल हाकिम हामिद हुसेन को उनकी कष्टगाथा सुनने के लिए भेजा। हामिद हुसेन ने अपनी रिपोर्ट दी परन्तु उस रिपोर्ट का कुछ प्रभाव नहीं हुआ। उधर बिजोलिया के राव ने 1903 ई० में किसानों पर एक नया कर 'चावरी' के नाम से लगाया। जिसका मतलब था लड़की का पिता ठिकाने को तेरह (13 रु०) जमा करावे और वर तथा वधू दोनों महलों में जाकर राव साहब का अभिवादन करें और नतमस्तक हों, तब बारात की बिदाई होती थी। यह कर अपमानजनक भी था अतः किसानों ने इसका विरोध किया और राव साहब से इस कर को माफ करने की प्रार्थना की। परन्तु राव साहब ने किसानों से कहा कि कर जरूर लिया जायेगा। "इन लड़कियों को बाजार में बेचकर पैसा लाओ!" किसान अपना अपमान तो सह सकता थे पर लड़कियों का अपमान सहना उनके लिए कठिन था अतः किसानों ने अपना सामान गाड़ियों में भरकर बिजोलिया की सीमा को पार कर ग्वालियर राज्य की सीमा में जल और अन्न ग्रहण किया। जब राव साहब को यह पता चला तो वह स्वयं किसानों को मनाने वहां गये और उन्हें वहां से वापस लाये।

1906 ई० में राव कृषण सिंह का स्वर्गवास हो गया तथा उनके कोई पुत्र न होने की वजह से उनका रिश्ते का भाई पृथ्वी सिंह, जो कामा का जमींदार भी था वह गद्दी पर बैठा। बिजोलिया में उसका शासन और भी कष्टदायी बन गया। उसका ध्येय केवल पैसा बटोरना

1. श्री माणिक लाल वर्मा, 'बिजोलिया सत्याग्रह का इतिहास'; प्रमोद, 'बिजोलिया आंदोलन का इतिहास' (अप्रकाशित); शंकर सहाय सक्सेना, 'पथिक'।

ही था। अतः उनके मुन्शी और फौजदार जनता को कष्ट देने लगे और किसानों पर नये-नये कर लगाये तथा बेगारें भी बढ़ाईं।

अतः लोगों ने पथिक जी से प्रेरणा पाकर किसान आन्दोलन को चार चांद लगाये। अतः बिजोलिया आन्दोलन में कई प्रेरक शक्तियों का उदय हुआ जिनमें डूंगरसिंह भाटी, साधु सीताराम, माणिक लाल वर्मा तथा हरिभाऊ उपाध्यय थे।

पथिक जी का आगमन और परिचय

पथिक जी का आगमन

बिजोलिया किसान सत्याग्रह का हम जब ध्यान करते हैं तो सहसा विजयसिंह पथिक जी का तेजस्वी व्यक्तित्व हमारी आंखों के सामने उभर कर आ जाता है। यह उनके क्रान्तिकारी और तेजस्वी व्यक्तित्व का ही चमत्कार था कि अपरमाल के समस्त किसान लम्बे वर्षों तक ठिकाने तथा मेवाड़ राज्य की सम्मिलित शक्ति से संघर्ष करते रहे। और भयंकर दमन को सहकर भी नत-मस्तक नहीं हुए। बिजोलिया किसान आन्दोलन की क्रान्तिकारी युद्ध प्रणाली और उसके दूरगामी क्रान्तिकारी प्रभाव को भली प्रकार समझने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि हम उनके सूत्रधार श्री विजयसिंह पथिक के व्यक्तित्व को समझ लें। जिन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा सत्याग्रह के आविर्भाव के पूर्व ही बिजोलिया के किसानों का ऐसा अद्भुत और सशक्त संगठन कर दिया, जिंसकी राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी ने भी प्रसंशा की।

पथिक जी का परिचय

श्री विजयसिंह का वास्तविक और पूर्व नाम भूपसिंह था। बाद को राजस्थान आने पर जब वे टाटगढ़ के खरवा ठाकुर श्री ठाकुर गोपाल सिंह के साथ नजरबन्द हो गये तो वहां से भेष बदलकर निकल गये और उन्होंने अपना नाम बदल कर विजयसिंह पथिक रख लिया और वे इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये।

उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले में मालागढ़ कस्बे के समीप

गुठावली ग्राम पथिक जी की जन्मभूमि है। पथिक जी जाति के गूजर थे। परन्तु वे जाति प्रथा में विश्वास न रखने के कारण कभी अपनी जाति बतलाते नहीं थे। उनको देशभक्ति अपने पूर्वजों से विरासत में मिली थी। उनके पितामाह 1857 में प्रथम स्वतंत्रता युद्ध में मालागढ़ नवाब की सेना के सेनापति के रूप में अंग्रेजों से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। उनके ताऊजी भी अपने पिता के साथ ही थे। बाद में वे छापामार युद्ध करते रहे। उनकी माता कमल कुंवर बड़े जीवट की साहसी वीर महिला थी। 1857 के स्वतन्त्रता युद्ध में, जबकि उनके परिवार के लोग छापामार युद्ध कर रहे थे, उन्होंने अपूर्व साहस का परिचय दिया था और कई अंग्रेजों को बन्दी बना लिया था। जब 1857 की सशस्त्र क्रान्ति असफल हो गई और पथिक जी का परिवार पुन: अपने ग्राम गुठावली में वापस आकर बस गया तो एक दिन जबकि उनके पिता को, जो बीमार थे, गिरफ्तार करने पुलिस दल आ गया। पुरुष सब बाहर गये हुए थे। पथिक जी की मां कमल कुंवर ने स्त्रियों को एकत्रित कर लाठियां लेकर पुलिस दल पर आक्रमण कर दिया और उन्हें मार भगाया।

ऐसे क्रान्तिकारी, देशमुख परिवार में साहसी और वीर माता के गर्भ से सन् 1888 ई० में सोमवार को होली के दूसरे दिन (धूलेड़ी) तिथि फागुन सुदी 15 सम्वत् 1944 को गुठावली में वीर बालक भूपसिंह का जन्म हुआ। जब भूपसिंह माता के गर्भ में थे तभी उनके पिताश्री का स्वर्गवास हो गया। वीर माता का वरदहस्त भी शीघ्र ही बालक भूपसिंह पर से उठ गया। जब वे पांच वर्ष के थे तभी उनकी वीर माता कुंवर का स्वर्गवास हो गया। पांच वर्ष का अबोध बालक पहले तो कुछ समय अपने बहनोई के पास तदुपरान्त अपने चाचा बलदेव सिंह के पास गुठावली के समीप गांव में और बाद को मह की छावनी और इन्दौर में रहा। इन्दौर में उनके चाचा बलदेव सिंह सेना के सूबेदार थे। इन्दौर में रहकर उन्होंने अरबी, फारसी, हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया। यद्यपि उनकी विधिवत किसी कालेज अथवा विश्वविद्यालय में शिक्षा नहीं हुई थी और न उनके पास कोई उपाधि ही थी परन्तु उनकी विलक्षण मेधा

और प्रतिभा के कारण वे एक उच्च कोटि के शिक्षक, कवि, लेखक, संपादक, संगठनकर्ता तथा राजनीतिज्ञ बन गये थे। देशभक्ति और क्रान्तिकारी भावना भूपसिंह को अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। जब वे इन्दौर में थे तब उनका सम्पर्क क्रान्तिकारी सान्याल से हुआ और उनके द्वारा महाविप्लवी नायक रासबिहारी बोस से मिले और उनके क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये। उनके क्रान्तिकारी जीवन का इतिहास अज्ञात है। क्योंकि उन्होंने किसी को उनके बारे में नहीं बतलाया। क्रान्तिकारी दल के नेता रासबिहारी बोस ने उन्हें राजस्थान में क्रान्ति का काम करने के लिए भेजा। वे अजमेर की रेलवे वर्कशाप में नौकर हो गये और एक अनुभवी मिस्त्री की सहायता से बम, बन्दूक, रिवाल्वर बनाना आरम्भ किया। खरवा के ठाकुर राव गोपाल सिंह भी क्रान्तिकारी दल के सम्पर्क में आ चुके थे। ब्यावर के प्रसिद्ध उद्योगपति देशभक्त दामोदर दास राठी के द्वारा उनका सम्पर्क रासबिहारी बोस से हो गया था। रासबिहारी बोस ने ही उनको भूपसिंह के सम्बन्ध में बतलाया था जब भूपसिंह राव गोपाल सिंह से मिले तो उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए। राव गोपाल सिंह ने उन्हें अपना निजी सचिव बना लिया और वे दोनों उस भारत-व्यापी सशस्त्र क्रांति और विप्लव की तैयारियां करने लगे, जिसकी 1914 में महाविप्लवी नायक रासबिहारी बोस ने समस्त भारत में योजना बनाई थी। योजना यह थी कि 21 फरवरी को उत्तर भारत की सैनिक छावनी में सेना विद्रोह कर दे और कुछ क्षेत्रों पर अधिकार कर युद्ध किया जावे तो देश भर में विद्रोह हो जायेगा। राजस्थान में विद्रोह कराने की व्यवस्था खरवा राव, गोपाल सिंह तथा विजयसिंह पथिक के नेतृत्व में होने वाली थी। 21 फरवरी को खरवा स्टेशन से कुछ दूर जंगल में भूपसिंह, खरवा के राव गोपाल सिंह कई हजार योद्धाओं का विप्लवी दल लिये विद्रोह की सम्पूर्ण तैयारी कर संकेत की प्रतीक्षा कर रहे थे। रात्रि को दिल्ली से अजमेर-अहमदाबाद जाने वाली रेलगाड़ी से खरवा के समीप जंगल में एक बम का धड़ाका कार्यारम्भ का संकेत था। उस संकेत को पाते ही भूपसिंह तथा राव गोपाल सिंह को अजमेर तथा

ब्यावर पर आक्रमण कर देना था, परन्तु संकेत नहीं मिला। अगले दिन गुप्त संदेशवाहक ने आकर लाहौर में विद्रोह का सरकार को पता चल जाने और क्रान्ति के असफल हो जाने की उन्हें सूचना दी। तुरन्त ही बहुत बड़ी राशि में अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद को गुप्त स्थानों में छिपाकर क्रान्तिकारी वीर सैनिक दल बिखर गये। जब वह भारत व्यापी सशस्त्र विद्रोह की योजना असफल हो गई और जब सरकार को राव गोपाल सिंह तथा भूपसिंह के उसके राजस्थान में प्रमुख नियोजक होने का पता लगा तो राव गोपाल सिंह के साथ ही भूपसिंह को भी टाटगढ़ में नजरबन्द कर दिया गया। कुछ ही दिनों बाद भूपसिंह को पता चल गया कि लाहौर तथा फिरोजपुर षड्यन्त्र के सम्बन्ध में उनकी गिरफ्तारी का वारन्ट निकल चुका है तो वे अंग्रेजों की आंखों में धूल झोंक कर टाटगढ़ से निकल भागे।

क्रान्तिकारी भूपसिंह गिरफ्तार होकर जेल में सक्रिय होकर पड़े रहना पसन्द नहीं करते थे। उनका कहना था कि मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं गिरफ्तार नहीं होऊँगा। जेल में पड़े रहकर मरने से यह अच्छा समझता हूं कि स्वतन्त्र रहकर भटका जावे और आवश्यकता पड़े तो लड़कर वीरगति को प्राप्त किया जाए। अस्तु भूपसिंह ने भेष बदला और साधु का वेश बनाकर पहरेदारों को धोखा देकर टाटगढ़ से निकल गए। जंगल और पहाड़ों में भटकते हुए कल्पनातीत जोखिम और कठिनाइयों का सामना करते हुए वे रात्रि को चलते और दिन में छिपकर पड़े रहते। क्योंकि समस्त प्रदेश में अंग्रेज के गुप्तचर उन्हें पकड़ने के लिए फैल गए थे। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें गिरफ्तार करने के लिए अथक प्रयत्न कर रही थी। खरवा नरेश राव गोपाल सिंह के संकेत पर उनके एक सम्बन्धी जागीरदार के पास गये। परन्तु वे राजा जी से भयभीत हो गए। इस कारण उन्हें उनका आश्रय नहीं मिल सका। अस्तु थके-मांदे चलकर गुरला गांव पहुँचे। गुरला के जागीरदार ने उन्हें आश्रय दिया और अपने गढ़ के जनाने भाग में उन्हें छिपा दिया। जब कुछ समय गुरला में उन्होंने विश्राम कर लिया तो उनके थकावट तथा रोग से शरीर में जर्जर शक्ति का संचार हुआ और उन्होंने गुरला छोड़ दिया। गुरला में

उन्होंने दाढ़ी बढ़ा ली और अपना नाम बदलकर विजयसिंह पथिक रख लिया। कुछ दिनों तक वे भिनाय के पास साधु वेश में एक साधु की कुटिया में रहे। आस-पास के लोग उस नए साधु के प्रति आकर्षित होने लगे। लोगों में नए साधु की विद्वत्ता और प्रतिभा की चर्चा होने लगी। साधु वेशधारी पथिक जी को संदेह हो गया कि एक गुप्तचर ने संभवतः उन्हें पहचान लिया है। अस्तु उन्होंने उस स्थान को छोड़ दिया। वहां से मेगटिया ग्राम गए। जहां प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री केशरी सिंह बारहट के जामाता ईश्वरदान आसिया रहते थे। ईश्वरदान आसिया भी रासबिहारी बोस के क्रान्तिकारी दल के सदस्य थे, अस्तु पथिक जी काकरोली चले आए।

पथिक जी के टाटगढ़ से निकल भागने के उपरान्त राव साहब गोपालसिंह तथा उनके भाई मोडसिंह आदि भी वहां से निकल गए थे। इन क्रांतिकारियों के निकल जाने से मेवाड़ के आस-पास के प्रदेश में बहुत अधिक सनसनी फैल गई। अंग्रेज सरकार के गुप्तचर, फौज और पुलिस की टुकड़ियां उनकी खोज में समस्त प्रदेश में फैल गई थीं। मेवाड़ के महाराणा फतहसिंह को भी विदेशी विभाग के दबाव के कारण सेना तथा पुलिस के दस्ते जगह-जगह नियत करने पड़े थे। परन्तु महाराणा फतहसिंह यह नहीं चाहते थे कि उनको गिरफ्तार किया जावे। उनकी सहानुभूति क्रान्तिकारियों के साथ थी। कुछ जागीरों तथा सर्वसाधारण की सहज सहानुभूति तो उनके साथ थी [illegible]व यही कारण था कि पथिक जी गिरफ्तार होने से बच गए। [illegible]जस्थान में पिछले समय से विप्लव तथा क्रान्ति की तैयारी [illegible]ते रहने के कारण भूपसिंह का कुछ छोटे जागीरदारों तथा देशभक्त [illegible]वकों से घनिष्ठ परिचय हो गया था इसलिए उन्होंने यह निर्णय कर लिया था कि वे राजस्थान में ही रहकर देश-सेवा का कार्य करेंगे।

काकरोली में क्रान्तिकारियों का एक छोटा-सा दल था। उस दल का नेता वहां दाणी (चुंगी अधिकारी) पुरोहित किशनसिंह था। आस-पास के अनेक युवक राजपूत छोटे जागीरदार तथा चारण उसके सदस्य थे। उन्हें जब पथिक जी के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ तो उन्होंने पथिकजी को काकरोली आकर उनका मार्ग-दर्शन करने का आग्रह किया। यही

कारण था कि पथिक जी काकरोली आये और राज समुद्र के उस पार भाणा गांव में उन्होंने एक पाठशाला स्थापित कर कार्य आरम्भ कर दिया। भाणा गांव में रहते हुए पथिक जी का मोही के श्री ठाकुर डूंगर सिंह भाटी तथा प्रसिद्ध क्रान्तिकारी केशरी सिंह के जामाता ग्राम मेगटिया निवासी ईश्वरदीन आयिया से घनिष्ठ परिचय हो गया। वे उनके कार्य में सहायक थे।

पथिक जी के मार्गदर्शन में काकरोली का दल अधिक सक्रिय हो उठा। क्रमशः सरकार की दृष्टि उधर गई और खुफिया विभाग के गुप्तचर बड़ी संख्या में उस क्षेत्र में फिरने लगे। उन्हें पता चल गया कि काकरोली के क्रान्तिकारी दल का नेतृत्व भाणा गांव की पाठशाला का अध्यापक करता है। अस्तु गुप्तचरों का भाणा गांव में आना-जाना अधिक होने लगा।

पथिक जी ने देखा कि भाणा गांव में रहने से खतरा है क्योंकि उन्हें इस बात के चिन्ह तथा सूचनाएं मिलीं थी कि गुप्तचर विभाग को उन पर सन्देह हो गया है। अस्तु वे वहां से हटकर एकान्त और सुरक्षित स्थान मोही पहुंचे और श्री डूंगर सिंह भाटी के यहां रहकर उन्होंने पाठशाला चलाई। कुछ समय वहां रहकर अधिक सुरक्षित स्थान की खोज में जहाजपुर पहुंचे। वहां भी एक पाठशाला चलाई। परन्तु जहाजपुर भी उनको सुरक्षित स्थान प्रतीत नहीं हुआ। अस्तु वे चित्तौड़ चले आए। उनका विचार था कि चित्तौड़गढ़ में देशभक्त युवकों का संगठन कर सम्पूर्ण राजस्थान में एक क्रान्तिकारी दल खड़ा करेंगे।

चित्तौड़ के समीप ही औछडी और पुठोली ग्राम है। औछडी के ठाकुर भूपाल सिंह को उनके फुफेरे भाई अजमेर जिले के नगर ग्राम के निवासी प्रतापसिंह राठौर का संकेत आ चुका था कि पथिक जी को काकरोली से यकायक हटना पड़ा है क्योंकि गुप्तचरों को उन पर संदेह हो गया है। वे आपके पास आवेंगे, उनकी वास्तविकता किसी पर प्रकट न करना। अस्तु पथिक जी चित्तौड़ से औछडी ग्राम आ गए और वहां रहने लगे। उनका पुठोली ग्राम के जागीरदार ठाकुर रामप्रताप सिंह तथा कतिपय अन्य जागीरदारों से भी घनिष्ठ संबंध

हो गया। चित्तौड़गढ़ में पथिक जी ने विद्या प्रचारिणी सभा की स्थापना की तथा पुठोली के ठाकुर रामप्रताप सिंह को प्रेरणा देकर क्षत्रिय सभा स्थापित कराई जिससे कि राजपूतों को संगठित किया जा सके। विद्या प्रचारिणी सभा के द्वारा वे देशभक्त और कर्मठ युवकों का चित्तौड़गढ़ में एक क्रान्तिकारी संगठन खड़ा करना चाहते थे। विद्या प्रचारिणी सभा के अधिवेशन को खूब धूमधाम से करवाते थे। चित्तौड़गढ़ के समीपवर्ती स्थानों में उन्होंने सभा की शाखायें भी स्थापित की थीं।

पथिक जी का बिजोलिया आगमन : यह हम पहले ही कह आये हैं कि बिजोलिया के किसान ठिकाने की लागतों और बेगारों के कारण दुखी थे। तीन बार उन्होंने सामूहिक विरोध किया, परन्तु योग्य नेतृत्व के अभाव में तीनों बार उनका आन्दोलन असफल हो गया। साधु सीताराम बिजोलिया के प्रमुख मार्ग-दर्शक तथा कार्यकर्ता थे। उन्होंने नायब मुंसरिम मोही के ठाकुर डूंगरसिंह भाटी की अध्यक्षता में बिजोलिया में विद्या प्रचारिणी सभा स्थापित की थी। श्री डूंगर सिंह भाटी पथिक जी से परिचित थे। वे पथिक जी के साहस, शौर्य, विद्वत्ता और राजनीतिक चातुर्य को भली भांति जानते थे। उन्हें यह भी ज्ञात था कि पथिक जी औछडी गांव में अज्ञातवास में रह रहे हैं। उन्होंने सीतारामदास जी को परामर्श दिया कि यदि वे किसी प्रकार पथिक जी को बिजोलिया ला सकें तो उनके नेतृत्व में बिजोलिया का किसान संगठन सबल और शक्तिशाली बन सकता है। इसी समय चित्तौड़गढ़ की विद्या प्रचारिणी सभा का वार्षिक अधिवेशन होने जा रहा था। विद्या प्रचारिणी सभा का बिजोलिया के पास प्रतिनिधि भेजने का निमंत्रण आया था। अस्तु साधु सीतारामदास तथा मगनलाल शर्मा बिजोलिया के प्रतिनिधि के रूप में विद्या प्रचारिणी सभा के अधिवेशन में सम्मिलित हुए।

साधु सीतारामदास तथा मगनलाल शर्मा पथिक जी से एकान्त में मिले। उन्होंने पथिक जी से कहा, "ब्रिटिश सरकार ने आपकी गिरफ्तारी के लिए पन्द्रह हजार रुपए के पुरस्कार की घोषणा की है। ऐसी दशा में आपका रेलवे के किनारे रहना खतरे से खाली नहीं है। अतएव आप

बिजोलिया चलिए, जहां आवागमन की कोई सुविधा नहीं है। अपरमाल मेवाड़ का अण्डमान है। वहां की जनता सुसंगठित है और अपने दुखों और कष्टों से त्राण पाने के लिए सब प्रकार का त्याग और बलिदान करने के लिए तैयार है। योग्य नेतृत्व के अभाव में हम लोग दबा दिए गए हैं। यदि आप जैसे व्यक्ति हमारा नेतृत्व करें तो बिजोलिया के किसान आन्दोलन करने को तैयार हैं। पथिक जी ने साधु सीतारामदास तथा मगनलाल शर्मा से दो दिन तक बात करके बिजोलिया के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त कर ली।

पथिक जी सफल संगठनकर्ता थे। जब उन्होंने मन में बिजोलिया जाकर बैठने का निर्णय कर लिया तो उन्होंने उसी क्षण कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने साधु सीतारामदास तथा मगनलाल शर्मा से एक लम्बा प्रतिज्ञापत्र लिखवाया कि वे बिजोलिया किसान आंदोलन के संगठन के लिए उनके (पथिक जी के) नेतृत्व में कार्य करेंगे। और उन दोनों से हस्ताक्षर करवा कर अपने पास रख लिया। उनसे कहा कि तुम लोग चलो, मैं शीघ्र ही बिजोलिया के किसानों की सेवा करने जाऊंगा। तुम्हारे साथ चलने से कभी तुम्हें खतरे का सामना करना पड़ सकता है। साधुजी को उन्होंने संकेत कर दिया कि वे उनका पूर्व परिचय किसी को भी न दें।

ठीक एक महीने के पश्चात सायंकाल का समय था। साधु सीतारामदास विद्या प्रचारिणी सभा के कार्यालय में कुछ काम कर रहे थे। उन्होंने दूर से देखा कि ऊंट पर सवार पथिक जी आ रहे हैं। उनके प्रभावशाली मुखमंडल पर प्रभावशाली राजपूती दाढ़ी बहुत ही आकर्षक लग रही थी। सिर पर साफा, जोधपुरी कोट की दोनों जेबों में कारतूस, गले में 6 फायर का पिस्तौल, कमर में पैर तक लटकी हुई तलवार, उनका बलिष्ठ शरीर साहस और शौर्य से दीप्त मुखमंडल और आंखों ने मिलकर उनके व्यक्तित्व को अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया था। बिजोलिया पहुंचकर उनको एक स्थान मिला, जहां रहकर वे एक नए आन्दोलन को जन्म दे सकते थे। अतः वे बिजोलिया जम गये।

पथिक जी बिजोलिया पहुंचे और विद्या प्रचारिणी सभा के भवन

में ठहरे। प्रातःकाल गांव वालों ने उन्हें वीर वेश में देखा तो आश्चर्य-चकित हुए और साधु सीतारामदास से पूछा कि ये कौन हैं? साधु सीतारामदास ने अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार उनका ठीक परिचय न देकर कहा कि विद्या प्रचारिणी ने पाठशाला के लिए नये अध्यापक बुलाए हैं। अब यह बच्चों को पढ़ाया करेंगे।

गांव के बाहर मांजी की धर्मशाला में ही विद्या प्रचारिणी सभा का कार्यालय था तथा पाठशाला चलती थी। पथिक जी वहीं रहने लगे। बिजोलिया पहुंचकर पथिक जी ने पाठशाला का कार्य शुरू कर अपने हाथ में ले लिया। पाठशाला चलाने में उनका एक ही ध्येय था: बालकों का सर्वांगीण विकास करना और उनमें देशभक्ति की भावना उत्पन्न करना जिससे जब भी देश को उनकी आवश्यकता हो, वे देश के लिए अपना सब कुछ अर्पण करने को तैयार रहें। वे बालकों को नियमित रूप से पढ़ाते रहे और उनमें देशभक्ति के भाव भरते थे। उनका शारीरिक विकास करने के लिए उनको बाकायदा परेड, आसन, व्यायाम कराते तथा अखाड़े में कुश्ती लड़वाते। राजस्थान के प्रसिद्ध पत्रकार श्री शोभालाल गुप्त जो दैनिक हिन्दुस्तान के सह-कारी संपादक रहे, वे पथिक जी की इसी पाठशाला के उनके छात्र-शिष्य थे। वास्तव में पथिक जी पाठशाला के द्वारा भावी आन्दोलन के लिए सैनिक तैयार कर रहे थे। अस्तु वे अपने शिष्यों में ज्ञान के साथ वीरता, साहस, शौर्य, स्वाभिमान और देश-सेवा की भावना भरने का उपक्रम करने लगे। कभी-कभी वे अपने शिष्यों को जंगल में ले जाकर सैनिक शिक्षा भी देने लगे। पथिक जी सम्भवतः अपने शिष्यों को भावी छापामार युद्ध (गुरिल्ला-युद्ध) की शिक्षा देना चाहते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि बिना सशस्त्र क्रान्ति के देश आजाद नहीं होगा। उन्होंने अपने विद्यार्थियों को खाकी सैनिक वर्दी बनवाई थी और उनकी एक सेना तैयार कर ली थी। आगे चल कर उनके इन शिष्यों ने बिजोलिया में बहुत प्रशंसनीय कार्य किया।

किन्तु पथिक जी केवल पाठशाला चलाने के उद्देश्य से ही बिजो-लिया नहीं आए थे, उनका मुख्य ध्येय किसानों को संगठित कर उनके कष्टों को दूर करना था और उसके उपरान्त बिजोलिया के किसान

संगठन के अनुसार ही राजस्थान में किसानों तथा प्रजा का संगठन कर और जहां सम्भव हो, देशभक्त राजाओं और जागीरदारों के सहयोग से ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध मोर्चा लेना था। एक बार वे उस प्रदेश की समस्त जनता को जागृत कर देना चाहते थे जिससे सोई हुई जनता संगठित होकर सामन्तशाही से मोर्चा ले सके, अस्तु दिन में वे पाठ-शाला के द्वारा बालकों और युवकों को तैयार करते थे और रात्रि में साधु सीतारामदास तथा श्री माणिकलाल वर्मा तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं के साथ गांव-गांव घूमते और किसानों को संगठित करते। पथिक जी की दूरदर्शिता, राजनीतिक सूझ-बूझ तथा संगठन करने की अद्-भुत क्षमता का ही परिणाम था कि बिजोलिया के किसानों का उन्होंने अत्यन्त सबल और क्रान्तिकारी संगठन खड़ा कर दिया जो भारतवर्ष में अपने ढंग का एक अनोखा तथा प्रथम किसान आन्दोलन था।

श्री साधु सीताराम तो पथिक जी को बिजोलिया लाये ही थे और वे बिजोलिया के सार्वजनिक जीवन में प्रमुख कार्यकर्ता के रूप में जाने हुए थे, अस्तु उनका सहयोग पथिक जी को मिलना स्वाभाविक ही था। परन्तु शीघ्र ही पथिक जी की दृष्टि युवक माणिकलाल वर्मा पर पड़ी उन्होंने देखा कि युवक माणिक वर्मा में एक साहसी और सफल कार्यकर्ता के गुण विद्यमान हैं। अस्तु उन्होंने वर्मा जी को देश-सेवा के लिए दीक्षित किया। पथिक जी की प्रेरणा से तथा उनके नेतृत्व में माणिक वर्मा ने देश-सेवा का व्रत लिया। सच तो यह है कि केवल बिजोलिया आन्दोलन का निर्देशन वर्मा जी ने ही किया था। पथिक जी के बाद वस्तुतः उनके नेतृत्व में जब बिजोलिया आन्दोलन हुआ उस समय भी वर्मा जी तथा श्री साधु सीतारामदास उनके मुख्य सहायक थे।

पथिक जी यह समझ गये थे कि अभी तक जो किसानों के आन्दो-लन असफल हुए हैं उसका एकमात्र कारण उनके शक्तिशाली संगठनों का न होना था। अतः उन्होंने एक युक्ति निकाली कि जो भी प्रार्थनापत्र ठिकाने को या राणा को जाये उसमें सैकड़ों किसानों के हस्ताक्षर हों, जिसे पंचायत का स्वरूप बनाया जाए। और उन्होंने

किसान पंचायत बनाई। उधर बिजोलिया की स्थिति दयनीय हो उठी, और ठिकाने का दमनचक्र बढ़ गया। प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया था। ब्रिटिश सरकार के दबाव से युद्ध का चन्दा और ऋण भी किसानों से जबरदस्ती उगाहा जाने लगा। अतः पथिक जी ने किसानों से आग्रह किया कि न चन्दा दो और न बेगार दो। 'प्रताप' समाचार-पत्र द्वारा बिजोलिया आन्दोलन का धुआंधार प्रचार कराया जाने लगा। अतः किसानों और किसान-नेताओं को गिरफ्तार किया गया। पथिक जी ने लोकमान्य तिलक को भी बिजोलिया किसान आन्दोलन से अवगत कराया तथा तिलक जी ने अपने 'मराठा' समाचार-पत्र द्वारा मेवाड़ के राणा से सम्पर्क किया और उन्हें याद दिलाया कि आपके पूर्वज तो स्वतन्त्रता के पुजारी थे, आपकी जेल में किसानों का होना एक कलंक है; अतः राणा से किसान कैदियों को रिहा कराया। उधर मेवाड़ राज्य के अधिकारियों ने बिजोलिया के नायक मुन्सरिम को बदलकर नया अधिकारी भेजा। नये मुंसरिम (जिसका नाम माधोसिंह था) ने जनता पर नये-नये जुल्म करने आरम्भ कर दिये। अतः लोगों से वही पुरानी बेगार व लागतें लेनी आरम्भ कर दीं। किसानों ने उन्हें देने से इन्कार किया, अतः 51 आदमी जेल भेज दिए गये। यह देखकर हजारों किसान इकट्ठे होकर महलों में पहुंचे और सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। ठिकाने की ओर से दमन बढ़ता ही गया। उसी समय सन 1918 ई० में दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। कुछ किसान तथा किसान नेता माणिकलाल वर्मा आदि अधिवेशन में पहुंचे और कांग्रेस के नेताओं को अपना कष्ट सुनाया। किसानों ने मालवीय का भाषण सुना। उस भाषण का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। जब वह वापस बिजोलिया लौट रहे थे तो बिजोलिया के मुंसरिम माधोसिंह कोठारी ने उन्हें जेल में बन्द कर दिया और किसानों को बेगार और लागतें देने के लिए कहता। इन्कार पर उन्हें पीटा जाता, स्त्री और बच्चों को सताया जाने लगा, आन्दोलन उग्र होने लगा। अतः सन् 1919 में राणा की ओर से एक कमीशन बैठाया गया। कमीशन ने किसानों को आश्वासन दिया कि तुम्हारे कष्ट दूर किये जायेंगे तथा सत्याग्रही और दूसरे पकड़े गए लोगों को छोड़ दिया गया।

सन् 1919 में कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हुआ । पथिक जी ने तय किया कि बिजोलिया का मामला अधिवेशन में उठाया जाये। केलकर ने इसका समर्थन किया। परन्तु दुर्भाग्य से पूज्य महात्मा गांधी और मालवीय जी ने किसानों के प्रस्ताव का विरोध किया। इस पर प्रस्ताव तो पास नहीं हो सका परन्तु देशभर के नेताओं का ध्यान बिजोलिया संघर्ष की ओर गया। उधर बिजोलिया किसान पंचायत के संघर्ष को भारत सरकार बोलशेविक रूस के कम्यूनों का दूसरा रूप समझती थी। अतएव भारत सरकार का पर-राष्ट्र विभाग महाराणा पर बिजोलिया आन्दोलन का दमन करने के लिए दबाव डाल रहा था। उधर पूरा सामन्त वर्ग तथा जागीरदार भी बिजोलिया के किसानों से कोई समझौता न करने के लिए दबाव डाल रहे थे।

उस समय बिजोलिया आन्दोलन तीव्रता तथा उग्रता की चरम सीमा पर पहुंच गया था। उसका प्रभाव अन्य प्रदेशों पर भी पड़ रहा था। पंचायत की आज्ञानुसार ठिकानों की आज्ञा न मानना, ठिकानों को मालगुजारी तथा अन्य कर न देना, ठिकानों को एक भी बेगार व लागत न देना और ठिकानों की कचहरी तथा पुलिस का बहिष्कार करना—यह देशी राज्यों को एक चुनौती थी। रियासत की ओर से खूब मारपीट हुई। लाठी, जुर्माना, काठ की यातना इत्यादि सभी प्रकार के दमन किए गए। अत: लोगों ने विवश होकर बिजोलिया को छोड़ दिया। शादी और मृत्युभोज बन्द किए गए तथा आस-पास की अन्य रियासतों में अपने गुजारे लायक खेती करनी आरम्भ कर दी।

जब किसानों ने ठिकाने की भूमि नहीं जोती तो ठिकाने की आर्थिक हालत बिगड़ गई।

सन् 1920 में नागपुर में कांग्रेस अधिवेशन हुआ तथा वहाँ पहुंचकर किसानों और उनके नेताओं ने बिजोलिया तथा देशी राज्यों के अत्याचारों की एक प्रदर्शनी लगाई। जिसका आशय था कि अंग्रेज राज्य का वरदहस्त और छत्रछाया पाकर सामन्तशाही निरंकुश होकर कैसे भयानक और रोमांचकारी अत्याचार कर सकती है। इस प्रदर्शनी का कांग्रेस-नेताओं पर अधिक प्रभाव हुआ। इससे पहले वह देशी

रियासतों से उलझना नहीं चाहते थे और केवल भारत से अंग्रेज की दासता समाप्त करना ही उनका ध्येय था। परन्तु पथिक जी के प्रयत्न से नागपुर कांग्रेस में मौलिक परिवर्तन आया। ब्रिटिश भारत की संकुचित परिधि को छोड़कर कांग्रेस ने देशी राज्यों सहित सम्पूर्ण हिन्दुस्तान की आजादी प्राप्त करना अपना ध्येय बनाया, और देशी राज्यों की प्रजा को भी कांग्रेस का प्रतिनिधि बनने का अधिकार दिया।

रात्रि के समय बिजोलिया किसान और उनके नेता गांधी जी से मिले और सत्याग्रह आन्दोलन के लिए आशीर्वाद लिया। जब ठिकानों ने यह देखा कि किसानों में एकता है और बलपूर्वक बेगार ले सकने में असमर्थ हैं तो किसानों को हानि पहुंचाने के लिए उन्होंने अन्य उपाय ढूंढ़े। कंजर तथा अन्य जातियों से उनके पशु चुराने, घर में तथा खेत में चोरी करने के लिए उन्हें रियासत की ओर से प्रोत्साहन दिया गया। किसानों में भेद करने के लिए वह असमर्थ थे अतः उनके नेताओं को पकड़ा गया। परन्तु लगान न देने की वजह से ठिकाने की स्थिति डगमगा गई। अतः किसानों से समझौता करने की बात आरम्भ हुई, परन्तु वह विफल हो गई। अन्त में 4 फरवरी 1922 ई० को ए० जी० जी० श्री हालैंड की ओर से किसान पंचायत को यह पत्र प्राप्त हुआ कि "हम किसानों के कष्टों को मिटाने के लिए उनके पास आए हैं, आप लोग पंचायत के प्रतिनिधि हमारे सामने अपने कष्टों को रखने के लिए उपस्थित हों। और दूसरा पत्र मेवाड़ राज्य के मन्त्री प्रभाषचन्द्र चटर्जी ने पंचायत को लिखा कि आप लोग अपने कष्ट बताने को उपस्थित हों। 5 फरवरी 1922 से 7 फरवरी तक किसानों और राज्य के कर्मचारियों तथा ए० जी० जी० श्री हालैंड के बीच संधि-वार्ता चली और अंत में श्री हालैंड ने किसानों की मांगों को स्वीकार किया। बिजोलिया में किसानों का पक्ष श्री रामनारायण चौधरी ने बड़ी योग्यता से रखा तथा समझौते का पालन कराने में भी श्री रामनारायण चौधरी और उनकी धर्मपत्नी को ठिकाने में ही रहना पड़ा।

इस प्रकार मेवाड़ रियासत के बिजोलिया ठिकाने के कृषकों को

लम्बे संघर्ष के बाद शान्ति मिली, इस संघर्ष का प्रभाव रियासत के अन्य भागों पर भी पड़ा—जिनमें मेडेसरा, पारसौली, बेंगू आदि ठिकानों पर भी बेगार और लागतें न देने की किसानों ने प्रतिज्ञा की तथा संघर्ष किए। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पहले किसानों ने बिहार में चम्पारन, बारदोली, दक्षिण में तेलंगाना किसान युद्ध तथा भारत के अन्य भागों में भी किसानों ने संघर्ष किए। परन्तु यह सब स्थानीय संघर्ष थे।

पंजाब में किसानों का शोषण और किसान संगठन

जिस समय राजस्थान में पथिक जी और रामनारायण चौधरी आदि नेता किसानों के लिए अंग्रेज सरकार, सामन्तों और जागीरदारों से संघर्ष कर रहे थे उसी समय पंजाब में भी किसान संगठन बन रहे थे। अंग्रेज-शासित प्रदेशों में भी किसानों की दशा शोचनीय थी। लार्ड हैस्टिंग्स ने भूमि पट्टे पर देने की प्रथा को जन्म दिया लेकिन लार्ड कार्न वालिस (1786 ई० 1793 ई०) ने जमींदारी प्रथा को जन्म दिया वह स्तमरारी बन्दोबस्त कहलाता था और सारे अंग्रेज-शासित भारत में लागू किया गया। इस व्यवस्था ने एक ऐसा वर्ग पैदा किया जोकि जमींदार, जागीरदार या बिस्वेदार कहलाते थे। ये नये शोषक-भेड़िये किसान का शोषण करते थे। किसानों का रक्त पीकर ये लोग निकम्मे होते चले गए। किसान की मां, बहन, बेटी, पत्नी, पशु, घर, फसल सब कुछ इन बिचौलियों की निजी सम्पत्ति थी। चूंकि अंग्रेज स्वयं पूंजीपति था अतः उसने इस वर्ग की भरपूर सहायता की। अगर साहूकार अपनी बही में किसान के नाम पर 10 रुपये के बदले सौ या एक हजार रुपये बना ले तो न्यायायालय उसे सही मानता था। साहूकार का सूद पांच से दस रुपया और कहीं-कहीं पर पच्चीस रुपया सैकड़ा तक होता था। साहूकार औरतों

के कपड़े, जेवर, चक्की, चूल्हा, बैल और घास तक कुर्क करा लेता था। साहूकार जागीरदार बनता जा रहा था। साहूकार किसान की फसल का आधा भाग या तीन-चौथाई ब्याज की शक्ल में लेता था। बाकी बचा हुआ उसे सरकार को लगान की शक्ल में देना पड़ता। लगान न देने पर उसे भूमि से बेदखल होना पड़ता। किसान लगान देने के लिए विवश होकर अपनी बहू-बेटियों तक को बेच देता था। किसान बेबस और बेसहारा खड़ा था। उसके पास न धन-शक्ति थी न उसका कोई संगठन था। सामाजिक स्थिति में उसका कोई स्थान नहीं था।

सन् 1917 ई० में जमींदारा एसोसिएशन की स्थापना हुई (पंजाब में किसान को जमींदार कहते हैं)। लाहोर में इसका दफ्तर बनाया गया। सरदार कृपाल सिंह मान उसके अध्यक्ष और सरदार खड़क सिंह ढिल्लों बी० ए०, एल-एल० बी० उसके सेक्रेटरी बने। इस संस्था में सिख और हिन्दू दोनों ही प्रकार के जमींदार (किसान) इकट्ठे हुए।

ई० सन् 1914 युद्ध के पश्चात् मांटेग्यू कमीशन के नाम से भारत-मन्त्री सर मांटेग्यू की अध्यक्षता में एक कमीशन भारत आया। उसका काम केवल यह देखना था कि भारत में क्या-क्या सुधार किए जाएं। अतः पंजाब में भी यह कमीशन गया और चौधरी छोटूराम के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि-मण्डल कमीशन के सामने उपस्थित हुआ। किसान प्रतिनिधियों ने अपनी तीन मांगें रखीं जो इस प्रकार थीं :

1. देहाती तथा शहरी इलाके अलग-अलग हों।

2. जनसंख्या और करों की वसूली की दृष्टि से 90 प्रतिशत सीटें देहात और 10 प्रतिशत शहरों को दी जावें।

3. देहाती हलकों से देहाती उम्मीदवार खड़े हो सकें।

यह तीनों प्रस्ताव स्वीकृत हो गये। किसान के बेटों के लिए राज-नीति में प्रवेश करना सुगम हो गया। मांटेग्य-चेम्सफोर्ड सुधारों के अनुसार हर तीसरे वर्ष कौंसिल के चुनाव होने थे। पहला चुनाव 192० ई० में हुआ। चौ० छोटूराम ने चौ० लालचन्द को किसानों की ओर से खड़ा करना चाहा। वह चाहते थे कि वह (लालचन्द) कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ें। परन्तु लाला लाजपत राय ने लालचन्द को इसलिए

टिकट नहीं दिया कि वह जाति से जाट है और मेम्बर बनने के बाद मिनिस्टर बनेगा। अतः चौ० लालचन्द को रोहतक-गुहाना सीट से खड़ा किया गया और वह निर्विरोध चुने गये। इसके बाद 1923 ई० में दुबारा चुनाव हुए। उस समय नेशनल यूनियनिस्ट पार्टी (संयुक्त राष्ट्र-वादी दल) का गठन हो चुका था। उस पार्टी में सभी हिन्दू, मुस्लिम और सिख किसान बिना जातिभेद के इकट्ठे हो चुके थे। लाला लाजपत राय उन दिनों कांग्रेस के लीडर थे। वह नहीं चाहते थे कि किसान संगठन मजबूत हो और शहरी लोगों को आघात पहुंचे। अतः उन्होंने फूट डालने का भरसक प्रयत्न किया और चौ० लालचन्द को हिन्दू पार्टी में आने के लिए विवश करना चाहा। अतः चौ० छोटूराम ने लाला लाजपत राय से कड़े शब्दों में कहा, "आप चौ० लालचन्द जी को एक जाति-पांति और सम्प्रदाय और मजहब से मुक्त पार्टी 'नेशनल यूनियनिस्ट पार्टी' से हटा कर हिन्दू पार्टी में लाने के लिए क्यों बेचैन हैं?" चौ० लालचन्द के विरुद्ध पैटिशन कराया और शहरी लोगों के धन के बल पर उन्हें सदस्यता से निलम्बित करा दिया।

22 सितम्बर 1924 ई० को चौ० छोटूराम को मिनिस्टर बनाया गया और उन्हें कृषि विभाग सौंपा गया। कृषि मन्त्री के रूप में सबसे पहले मण्डी जल विद्युत योजना का शुभ आरम्भ किया। चमड़ा रंगाई के लिए सरकार से अधिक रुपया तथा सहकारी संस्थाओं के लिए अधिक रुपए की मांग की तथा असेम्बली से पास कराया कि सहकारी संस्थाओं में किसान के बेटे ही नौकरी कर सकेंगे। 1926 में फिर चुनाव हुए चौ० छोटूराम मेम्बर तो बने परन्तु साहूकारों और धनवान शहरी लोगों के दबाव में आकर गवर्नर उन्हें मन्त्री पद न दे सके। इस बीच उन्होंने किसानों में जागृति पैदा करने के लिए जनता में कार्य किया और किसान संगठन 'जमींदार पार्टी' के नाम से बनाया। इनकी पार्टी दिनोंदिन उन्नति पर जाने लगी। श्वेत अंग्रेज और काला अंग्रेज यह सब कुछ कहां बरदाश्त कर सकता था। ये लोग हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग को तो मजबूत देख सकते थे किन्तु किसान पार्टी को, जिसमें सभी धर्मों के लोग बिना जातिभेद के सम्मिलित थे, फूटी आंखों नहीं देखते थे। अतः चौ० छोटूराम ने एक पांच सूत्री कार्यक्रम

बनाया—1. रिश्वतखोरी के खिलाफ, 2. साहूकार और सरकार के द्वारा जमींदारों (किसानों) के लुटाई की सम्बन्ध में, 3. मजहब की अपेक्षा किसान जाति के महत्त्व पर जोर, 4. समान व्यवसाय के आधार पर संगठन, 5. नौकरियों और चुनाव द्वारा सरकार में प्रवेश।

कई समाचार-पत्रों द्वारा और सारे प्रान्त में जलसों द्वारा उन्होंने इस कार्यक्रम का प्रचार किया तथा पंजाब में किसानों के लिए काम करने वाले लोग, जो कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी में थे, उनकी पार्टी में शामिल होने लगे। यह देख कर गैर-किसान पार्टियां बेचैन हो गईं और शोर मचाने लगी कि उनका दीन खतरे में है, धर्म नष्ट हो रहा है, पथ भंवर में पड़ गया है, आदि-आदि। वह 1927 से 1935 ई० तक असेम्बली में किसानों और छोटे वर्ग के लिए हमेशा बोलते रहे और अपने संगठन को मजबूत करते रहे।

1934 ई० में पंजाब कौंसिल में कर्जे से मुक्तिदायक बिल पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि अगर किसानों को कर्जे से राहत न मिली तो खून-खराबा हो जाएगा। परिस्थितियां बहुत निराशाजनक हैं। यदि साहूकारों को यही छूट रही कि वे जमीदारों के हल, बैल, खाने-पीने की चीजें और पहनने के कपड़े तक कुर्क करा सकेंगे, तो इस निर्दयीपन का नतीजा खूनी क्रांति होगी।"

1935 के शासन सुधारों के अनुसार 1936 ई० में चुनाव सम्पन्न हुए। अप्रैल 1937 में मन्त्रिमण्डल का गठन हुआ। केवल पंजाब में ही जमींदार (किसान) पार्टी की हुकूमत बनी। पंजाब का प्रधानमन्त्री सर सिकन्दर हयात खां तथा चौ० छोटूराम माल मन्त्री बने।

किसानों के हित में जो कार्य जमींदार पार्टी ने किए वे इस प्रकार हैं :

1. पंजाब में किसान से पैदावार का खर्चा काट कर पैंतालीस फीसदी मालगुजारी के रूप में लिया जाता था। परन्तु चौ० छोटूराम की यूनियनिस्ट पार्टी ने यह रकम 25 प्रतिशत कर दी। इस पर कांग्रेस वालों तथा हिन्दू सभाइयों ने उनकी आलोचना की।

2. भाखड़ा बांध योजना को मूर्तरूप दिया गया। इस पर सभी

कांग्रेसी, केवल पं० श्रीराम शर्मा को छोड़ कर, नाराज हुए।

3. सारे प्रान्त में माप-तोल के बाट और पैमाने नियत किए गए।

4. पंजाब में छोटे उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन दिया।

5. 7 जुलाई 1938 को पंजाब 'कृषि उत्पादन बाजार कानून' का बिल पेश किया और अपने भाषण में चौ० छोटूराम ने कहा कि "भोले-भाले कृषक लोग बाजारों में अपनी पैदा की हुई वस्तुओं का उचित दाम नहीं पा रहे हैं। मण्डियों की अन्धेरगर्दी समाप्त करने के लिए मैं इस बिल को रख रहा हूं। उन्होंने कहा कि किसान का कर्ज से दबा रहना, उन पर करों का उचित से अधिक भार होना तथा उनकी पैदा की हुई वस्तुओं का उचित दाम न मिलना उनके साथ अन्याय है।" इस बिल के अनुसार मण्डियों में मण्डी कमेटी का निर्माण होगा जो व्यापारियों के व्यवहार की निगरानी करेगी। बाट और तराजू की गडबड़ी की निगरानी भी करेगी। किसानों से अनुचित वसूलियों को रोकेगी जोकि दुकानदार भिन्न-भिन्न नामों से वसूल करते हैं। इस बिल के अनुसार प्रत्येक व्यापारी को लाइसेन्स लेना होगा। मण्डी कमेटी में दो-तिहाई मेम्बर किसान होंगे। इस बिल का प्रबल विरोध कांग्रेस पार्टी के लीडर गोपीचन्द जी भार्गव ने किया और उन्होंने कहा, "मैं जानता हूं कि पंजाब का किसान शर्मनाक गरीबी में फंसा हुआ है और यह भी मानता हूं कि मण्डी में उसकी उपज का सही दाम नहीं मिलता परन्तु सरकार जनता के सभी वर्गों को अपने साथ रखे। अगर यह बिल जल्दी में पास हो गया तो पंजाब में गदर हो जायेगा।" डॉ० सर गोकुल चन्द ने इस बिल को मार्ईटिंग बिल कहा। शहरी प्रतिनिधियों ने अपने तरीके से इस बिल को जाट और बनिया का सवाल बना दिया। दीवान चमन लाल ने छोटूराम को हिटलर कहा। इस पर चौ० छोटूराम ने व्यंग्य करते हुए कहा कि "अगर पंजाब में यहूदी हैं तो हिटलर का पैदा होना स्वाभाविक है।"

डॉ० गोकुल चन्द ने कहा कि इस बिल के पास होने पर रोहतक के दो धेले के जाट लखपति बनिये के बराबर मार्केटिंग कमेटी में बढ़ेंगे। चौधरी के विरुद्ध जातिवाद का जहर फैलाया जाने लगा। 'मिलाप' और 'प्रताप' समाचार-पत्र तो शिष्टाचार का भी निर्वाह नहीं

करते थे। वे उनके नाम को पूरा न लिखकर 'छोटू' तथा 'छोटू खां' लिखने लगे। इस द्वेषपूर्ण अभियान में कांग्रेसी भी सम्मिलित हुए।

6. सन् 1940 ई० में पंजाब असेम्बली में बिक्री कर का मसविदा रखा गया।

7. प्राइमरी शिक्षा को अनिवार्य किया गया।

8. छोटे उद्योग को धन्धों प्रोत्साहन देने के लिए सरकारी मदद का बिल भी चौ० छोटूराम ने रखा। इस बिल से कांग्रेसी मेम्बर बहुत दुखी हुए। और लाला दुलीचन्द जो, कांग्रेसी थे, अपने नकली लबादे को उतार कर कहने लगे, "जाट और उद्योग-धन्धे! जाटों का उद्योग-धन्धों से क्या सम्बन्ध हो सकता है?"

9. कृषक सहायता कोष की स्थापना कराई।

10. कर्जे में दबे रहने की वजह से किसान की कमर टूट-चुकी थी। अतः सन् 1934 ई० में पंजाब कौंसिल में मेम्बर की हैसियत से बोलते हुए चौधरी छोटूराम ने कहा, "हमारी जमींदार सरकार ने पंजाब से आर्थिक गुलामी के जुए को उतार फेंका है। हम लोग कुछ वर्ष पहले साहूकारों के कर्जे से बुरी तरह जकड़े हुए थे। उनके लोग तो उनके डर से बाहर भी नहीं निकलते थे। विवाह-शादियों और त्यौहारों के समय महाजन लोग कुर्की लाकर हमें जलील करते थे। आज हमने पंजाब में इस तरह के कानून बना दिये हैं। कोई साहूकार किसान को कर्जे के बदले कैद नहीं करा सकता। अब हमारे घर-घेर कुर्क नहीं हो सकते। हल, बैल, दुधारू पशु और फसल सुरक्षित हैं। वह जगह भी कुर्क नहीं हो सकती जहां किसान के पशु खड़े होते हैं और गाड़ी तथा चारा रखा जाता है, कूड़ा डाला जाता है। फसल की पैदा-वार का एक तिहाई कुर्क नहीं होगा। यदि वह एक तिहाई भाग किसान के लिए छः महीने के लिए काफी न हो तो उतना हिस्सा कुर्क नहीं होगा। खेतों के पेड़ भी कुर्क नहीं होंगे। चाचा और ताऊ के मरने के बाद उस पर कर्जा भी मर जायेगा।" यह बिल पास हुआ। और 'रिलीफ इडेब्टेडनेस' बिल अर्थात कर्जे से मुक्तिदायक बिल 1934 ई० के नाम से विख्यात हुआ।

इस जमींदार पार्टी को उस समय कई मोर्चों से अपने सिद्धांत और

संगठन की रक्षा करनी थी। अंग्रेज, हिन्दू और मुस्लिम साम्प्रदायिक संगठन तथा कांग्रेस जो कि किसान का झूठा नारा देकर उसकी आड़ में शहरी वर्ग का समर्थन करती थी। इतने दुश्मनों के होते हुए पंजाब में किसान की एक जाति बिना धर्म और किसी जन्म-जात के राष्ट्र-वादी पार्टी बनी, जिसने हरिजनों और मजदूर हितों की रक्षा को भी अपना सिद्धान्त बनाया था। इस जमींदार पार्टी ने धर्म को राजनीति से अलग रखा। निर्बल लोगों की सेवा तथा 85 प्रतिशत पीड़ित और शोषित किसानों के लिए तन-मन-धन से कार्य किया।

अंग्रेज वायसराय से चौधरी छोटूराम की झड़प : 2 जन 1942 ई० को नई दिल्ली में लार्ड वेविल ने भारत के संघमन्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में पंजाब की ओर से चौधरी छोटूराम शामिल हुए। वायसराय ने संघमन्त्रियों से प्रार्थना की कि आप लोग गेहूं का कन्ट्रोल रेट 6 रुपये प्रतिमन स्वीकार कर लें, आपकी बड़ी कृपा होगी। सब मन्त्री चुप रहे परन्तु छोटूराम ने कहा कि छः रुपया मन गेहूं देने में हम असमर्थ हैं। वायसराय ने कहा कि सब लोग तो चुप हैं, तुम क्यों रुकावट डालते हो? चौधरी साहब बोले, "यह तो सब गेहूं लेने वाले हैं केवल देने वाला तो मैं ही हूं। गेहूं छः रुपये मन उस वक्त तक नहीं दिया जा सकता जब तक किसान के उपयोग में आने वाली सभी वस्तुएं कन्ट्रोल से न मिलें।" वायसराय महोदय उनके इस दृढ़ उत्तर से नाराज हुए और कहने लगे कि इस "समय हम किसान की कोई मदद नहीं कर सकते।" तब चौधरी साहब ने खड़े होकर कहा कि "हम गेहूं 10 रुपये प्रतिमन से कम नहीं देंगे। चाहे हमें गेहूं जलाना पड़े। इस पर मीटिंग समाप्त हो गयी।"

लार्ड वेविल की ओर से पंजाब के गवर्नर और चीफ मिनिस्टर को लिखा गया कि चौधरी छोटूराम का व्यवहार बहुत रूखा और कठोर था, इस प्रकार का आदमी पंजाब में अशान्ति फैला सकता है। तब पंजाब के गवर्नर और चीफ मिनिस्टर ने लिखा कि चौधरी साहब पंजाब के एक जिम्मेदार आदमी हैं पंजाब में जो शासन चक्र चल रहा है वह चौधरी जी के कारण ही है। वायसराय ने मामले की गम्भीरता को समझा और आदेश दिया कि पंजाब में अच्छे गेहूं का भाव

रुपये प्रतिमन दिया जाये। चौधरी छोटूराम की आर्थिक लड़ाई के साथ राजनीतिक चिन्तन भी किसी राजनीतिज्ञ से पीछे नहीं था। सन् 1940 के आस-पास कांग्रेस गद्दी पाने को इतनी उतावली थी कि मुसलमानों को अधिक से अधिक अधिकार देकर भी वह स्वराज्य पा लेना चाहते थे। महात्मा गांधी ने मो० जिन्ना के हाथ में कोरा कागज देकर कह दिया था कि अगर मो० जिन्ना चाहें तो उन्हें भारत का उच्च शासक बनाया जा सकता है। परन्तु पाकिस्तान की मांग बिना पंजाब के पूरी नहीं हो सकती थी। पंजाब का मुसलमान चौधरी छोटू-राम के साथ यूनियनिस्ट पार्टी से बंधा है। अतः बिना छोटूराम से बात किये मो० जिन्ना ने कांग्रेस से कोई भी बात करना ठीक न समझा। बातें छोटूराम से की गयीं परन्तु उसी समय 'ट्रिब्यून' में एक लेख छपा जिसकी अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—"जिस तरह हिटलर समस्त यूरोप विजय करता हुआ स्टालिनग्राड से टकराते चूर-चूर हो गया उसी भांति मि० जिन्ना को भी लाहोर यूनियनिस्ट पार्टी से टकराने पर निराशा ही हाथ लगी।" चौधरी छोटूराम ने नम्रतापूर्वक बम्बई का रास्ता या जेल का रास्ता मो० जिन्ना को बताया।

चौधरी साहब पाकिस्तान न बनने देने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे और उन्होंने जहां साम्प्रदायिक मुस्लिम लोगों को प्रभावशून्य बना दिया था वहां सूदखोर महाजन और अंग्रेज की कूटनीति को भी प्रभाव-हीन बना दिया था।

जिन दिनों चौधरी साहब भारत विरोधी तत्त्वों को नष्ट कर रहे थे, उन दिनों कांग्रेस के नेता मुस्लिम लीग की मिन्नतें कर रहे थे। खाकसारों के दमन पर डॉ० गोपीचन्द भार्गव ने, जो सदन में कांग्रेस के नेता थे, काम रोको प्रस्ताव पर मुस्लिम लीग का साथ दिया। चौ० छोटूराम विचलित नहीं हुए और पंजाब के मुसलमानों को पाकिस्तान के दुष्परिणाम समझाते रहे। उनका कहना था कि (1) भारत में पाकिस्तान नहीं बन सकता। (2) बिना ताकत आजमाये मैं पंजाब में आपके प्रभाव को कदापि स्वीकार नहीं करूंगा। (3) भारत को अखण्ड बनाए रखने के लिए उन्होंने व्रत लिया कि ऐश-आराम मेरे लिए उस समय तक हराम है जब तक पाकिस्तान की

उठती लहर को दबा न दूं।

अतः चौ० छोटूराम के अथक परिश्रम ने उनके स्वास्थ्य को डुबो दिया। 9 जनवरी 1945 ई० को किसानों का रहबर, अखण्ड भारत का भक्त, मि० जिन्ना को पंजाब से निकालने वाला इस संसार से, शोषित और पीड़ित जनता को करुण क्रन्दन और चीत्कार करते हुए, भारत के भाग्य को सदा के लिए अधर में छोड़ गया। 24 नवम्बर 1881 के दिन रोहतक जिले के गढ़ी सापला ग्राम में जन्मा। बालक चौधरी सुखीराम ओहलान का पुत्र सदा के लिए भारत में किसान मसीहा के रूप में जाना जाएगा।

खंड दो

चौधरी चरण सिंह : किसान-चेतना के संदर्भ में

चौ० चरणसिंह और उनका जीवन

उत्तर प्रदेश में भी किसानों का शोषण उसी प्रकार से किया जाता था जिस प्रकार से अन्य प्रांतों में। राजस्थान में पथिक जी और पंजाब में सर छोटूराम की मृत्यु के बाद देश स्वतन्त्र हुआ। भारत का बटवारा हुआ। कांग्रेस और मुस्लिम लीग की मनोकामना और लेडी माउन्ट बेटन की इच्छा ने पं० नेहरू को भारत का प्रधानमंत्री बनाया। इस समय देशी परिस्थितियां बदल चुकी थीं। अंग्रेजी काल में प्रांतीय असेम्बलियों के चुनाव में कुछ विशेष प्रकार के वोटर ही वोट दे सकते थे जिसमें मालगुजारी देने वाले किसान और टैक्स देने वाले अन्य लोग ही अपने प्रतिनिधि चुन सकते थे। परन्तु स्वतन्त्र भारत में हर बालिग व्यक्ति को वोट देने का अधिकार दिया गया। अतः सरकार में संविधान के अनुसार किसी विशेष जाति का चुना जाना मुश्किल था। पंजाब में जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, किसानों को 90 प्रतिशत स्थान और शहरी लोगों को 10 प्रतिशत स्थान दिए जाते थे। अतः किसानों की एक पार्टी का शासन कितने ही वर्षों तक चलता रहा परन्तु उत्तर प्रदेश में पहले ही से कांग्रेस पार्टी का कोई मुकाबला करने वाला नहीं था। पं० नेहरू को समाजवादी कहा जाता था। फैजपुर कांग्रेस में किसानों की समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया गया। फलस्वरूप असेम्बली के सन् 1937 के चुनाव में किसानों ने

कांग्रेस का साथ देकर कांग्रेस पार्टी को सफल बनाया। सन् 1942 में अहने 8 अगस्त के प्रस्ताव में कांग्रेस को यह स्वीकार करना पड़ा कि वह किान-मजदूर राज्य स्थापित करेगी। अतः मजदूर भी कांग्रेस की ओर झुका। कई प्रांतों में कांग्रेस खूब फूली-फली और सत्ता में आई।

चौ० चरण सिंह जी, जिन्होंने पहली बार 1930 ई० में नमक कानून तोड़कर छः महीने का कारावास भुगता, कांग्रेस के सक्रिय सदस्य बने। यहीं से इनका राजनीतिक जीवन शुरू हुआ। किसान के प्रति गहरी चिन्ता और सरकार में रहते हुए उत्तर प्रदेश के किसानों के लिए उन्होंने जो कुछ किया वह अगले पृष्ठों पर लिखा जाएगा। आज भारत के केन्द्रीयस्तर पर जो किसान चेतना दिखाई दे रही है वह तथा केन्द्रीय स्तर पर संगठित कर किसानों को दिल्ली तक जाने का अब रास्ता दिखाना उन्हीं के परिश्रम और सूझबूझ का परिणाम है। तक जो भी किसान-मांगऔर किसान-संघर्ष होते रहे हैं वह प्रांतीय मंच थे, परन्तु चौ० चरणसिंह की प्रेरणा से ही पूरे देश का किसान एक पर आया।

चौधरी चरण सिंह

चौ० चरणसिंह जी किसान घर में पैदा होकर भारत के प्रधान मन्त्री तक बने। पूंजीपतियों की पूरी मशीनरी, समाचार-पत्र तथा उनके टुकड़ों पर पलने वाले राजनीतिक नेता तथा झूठा मुखौटा लगाकर समाजवाद के नाम पर पूंजीपति समर्थित पार्टियां किसान संगठन को नष्ट करने पर तुली हुई हैं और किसान की चमकती हुई किरण से भयभीत होकर उसके नेता पर कुलक, हरिजन विरोधी, जातिवाद का पोषक तथा अन्य बातों से उसे कलंकित कर रहे हैं। अतः चौधरी चरण सिंह के जीवन-चरित्र पर कुछ निगाह डालनी होगी।

चौ० चरणसिंह का जीवन-परिचय

औरंगजेब के काल में जो विद्रोहाग्नि किसानों में प्रज्वलित हुई थी उनमें भटिण्डा के आस-पास रहने वाले शिवगोत्री लोग भी थे (प्राचीन

वंश। ऋग्वेद में जहां दस राजाओं के युद्ध का वर्णन है वहां शिव जनपद का भी वर्णन आता है। अत: उस जनपद के रहने वालों को शिवी कहा गया।) हूणों के आक्रमण से प्रभावित होकर वे सिन्ध और बलोचिस्तान के उस क्षेत्र को छोड़कर लाहौर, लुधियाना और भटिण्डा क्षेत्र में आ गए। इन शिवगोत्री, लोगों ने किसानों का नेतृत्व करने का निर्णय किया। इनमें से कुछ लोग वर्तमान गुड़गावां जिले में भूक्खू, जलौलिया, लावलपुर, जतोली नगला, तिरसठा, हाजीपुर, देलाको, छपरौला, अछरोदा, अटाली नगला आदि गांव में आकर रहने लगे। उन्होंने तिब्बत (तिरपत) गांव में चौ० गोपालसिंह के नेतृत्व में 1705 ई० में लागोन के गूजरों की सहायता और मन्त्रणा से इस क्षेत्र के मुगल शासन के एक मुख्य स्तम्भ का वध करके उसकी जमींदारी पर अधिकार कर लिया।

संयोगवश उस समय औरंगजेब के मर जाने पर फरीदाबाद के मुगल अधिकारी मुर्तिजा खां ने भय से गोपाल सिंह के साथ सन्धि कर ली और उसे परगने का चौधरी बना दिया। 'देहली गजेटियर' के अनुसार 1710 ई० में गोपालसिंह को एक आना प्रति रुपया कटौती करने का अधिकार दे दिया। चौ० गोपाल सिंह के पुत्र सन्त चरणसिंह के दो पुत्र बलराम सिंह तथा बहारिया नामक पैदा हुए। बलराम सिंह ने बल्लभगढ़ बसाया और बहारिया ने अपने तीन पुत्रों सहित बुलन्दशहर जिले के गुलावठी के पास भटोना नामक स्थान पर अधिकार कर लिया।

'चहार गुलजार शुजाई' का लेखक (हरिचरणदास की 1785 ई० में लिखित पुस्तक) कहता है कि स्वर्गीय इतिमादुद्दौला के समय के सूरजमल जाट के एक रिश्तेदार बलराम नामक वजीर ने अफसरों को मार कर फरीदाबाद जिले पर अपना अधिकार कर लिया था। चौ० गोपालसिंह तिब्बत ग्राम में आकर रहे अत: उनके वंशज तेवतिया कहलाए।

चौ० बहारिया सिंह के तीन पुत्रों ने जन्म लिया: (1) चौधरी सदानन्द, (2) खुशीराम, (3) बादामसिंह।

इन तीनों पुत्रों की भटोना ग्राम में अलग-अलग पट्टी बसी। (मोहल्ला) परिवारों के बढ़ जाने पर इन लोगों ने कितने ही ग्रामों

में भूमि खरीद कर अपना रहना-सहना आरम्भ किया। जिले मेरठ में भदोला और चित्तौडा ग्राम खरीद लिए इसी भदोला ग्राम के चौधरी मीर सिंह के तीन पुत्र हुए : (1) चरण सिंह (2) निरंजनसिंह (3) मानसिंह ।

23 सितम्बर 1902 ई० को इस परिवार के चौधरी चरण सिंह का जन्म हुआ। 1923 में विज्ञान में स्नातक, 1925 में इतिहास में एम० ए०, 1926 ई० में कानून की डिगरी तथा 1928 में गाजियाबाद में वकालत आरम्भ की और 1939 में मेरठ चले गए।

राजनीतिक जीवन

नमक कानून का उल्लंघन करने पर 1930 ई० में 6 महीने का कारावास, 1940 ई० में सत्याग्रह आन्दोलन में 1 वर्ष की कैद। 1942 में भारत सुरक्षा अधिनियम में गिरफ्तार करके 1943 में रिहा किया।

1929 से 1939 तक चौ० साहब गाजियावाद नगर कांग्रेस समिति के सदस्य रहे तथा समिति के किसी न किसी पद पर आसीन रहे। 1939 से 1948 तक मेरठ जिला कांग्रेस समिति का इन्हें सदस्य बना दिया गया। 1951 में राज्य संसदीय बोर्ड का सदस्य बनाया गया। 1948 से 1956 तक चौ० साहब राज्य विधान मंडल में कांग्रेस पार्टी के प्रधान सचिव रहे।

अप्रैल 1946 ई० में उनको संसदीय सचिव नियुक्त किया गया। 1951 से आगे कई वर्षों तक वह उत्तर प्रदेश मन्त्रिमण्डल में रहे।

वह माल मन्त्री, कृषि मन्त्री, सिचाई मन्त्री, गृह मन्त्री, पशुपालन मंत्री तथा परिवहन विभाग और ऊर्जा विभाग जैसे महत्त्वपूर्ण विभागों को सुशोभित करते रहे।

सन् 1967 में उन्होंने कांग्रेस से त्याग-पत्र दिया। अतः विपक्षी दलों ने उन्हें मुख्यमन्त्री पद सम्भालने के लिए विवश किया और उत्तरप्रदेश का मुख्यमन्त्री बनाया। अतः वह प्रान्त के मुख्य मन्त्री रहते हुए संयुक्त विधायक दल में घुटन अनुभव करने लगे और 1968 ई० में इस्तीफा दे दिया। इन्दिरा सरकार ने 25 जून 1975 ई० की रात को उन्हें गिरफ्तार करके तिहाड़ जेल में बन्द कर दिया तथा 1976

ई० में उन्हें रिहा कर दिया गया।

1977 ई० में संसद के चुनाव हुए। 'जनता पार्टी' नामक पार्टी बनाई गई, जिसकी स्थापना में चौ० चरण सिंह का हाथ था। अतः जनता पार्टी का बहुमत आया। मोरारजी को प्रधानमन्त्री और चौ० साहब को गृहमन्त्री बनाया गया। 30 जून 1978 ई० को उन्होंने पद से इस्तीफा दे दिया। इसके बाद जनता पार्टी में जुड़े हुए घटक मोरारजी से नाराज हो गये और मोरारजी को भी अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा। इसके पश्चात् कुछ पार्टियों ने चौ० चरण सिंह को सितम्बर 1997 में प्रधानमन्त्री बनाया। वह जनवरी 1980 तक, जब तक नये चुनाव नहीं हुए, प्रधानमन्त्री के आसन पर रहे।

चौ० चरण सिंह और उनके सामाजिक कार्य

चौ० चरण सिंह के जीवन के कार्यकलापों में (1) सामाजिक, (2) राजनीतिक तथा (3) आर्थिक गतिविधियां सम्मिलित की जा सकती हैं, जो उन्होंने अपने जीवन में अपनाईं और गरीब किसान, मजदूर तथा राष्ट्र के हित में प्रस्तुत कीं। जिसका उल्लेख विस्तार से करना होगा।

सामाजिक चेतना और सामाजिक परम्पराओं में योगदान : चौ० साहब आर्यसमाजी विधारधारा के कट्टर समर्थक हैं। उन पर महर्षि दयानन्द के सुधार आन्दोलन का प्रभाव अपना अलग स्थान बनाए हुए है तथा समाज के उद्धार व छुआछूत मिटाने के लिए दृढ़, कठोर संकल्प उनके मन में उस समय ही उदय हो गया था जब उन्होंने गाजियाबाद में रहते हुए अपना रसोइया एक हरिजन भाई को नियुक्त किया था। तब वह अपने साप्ताहिक यज्ञ में हरिजन व पिछड़ी जाति के लोगों को आमन्त्रित किया करते थे।

वह जाति प्रथा को हिन्दू समाज के लिए एक क्लेश समझते हैं। अतः अप्रैल 1939 में श्री चरण सिंह जी ने कांग्रेस संसदीय दल के सम्मुख एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया कि शिक्षा संस्थाओं तथा सार्वजनिक सेवाओं में प्रवेश देते समय हिन्दू उम्मीदवारों की

जाति के बारे में नहीं पूछना चाहिए, केवल यह पूछना चाहिए कि उम्मीदवार अनुसूचित जाति का है या नहीं ।

उन्हीं के अनुरोध पर 1948 ई० में सरकार को यह निर्णय लेना पड़ा कि भूमि अभिलेखों में किसान की जाति न लिखी जाये ।

1954 ई० में पं० नेहरू को संविधान में एक संशोधन का सुझाव देते हुए उन्होंने लिखा, "राज्यों की राजपत्रित सेवाओं में उन नवयुवकों को भर्ती करना चाहिए जो कि अपनी जाति के बाहर विवाह करने के लिए तैयार हों ।"

भारतभूमि को वह एक सुदृढ़ और संगठित राष्ट्र के रूप में देखना चाहते हैं तथा भाषाई विवाद और क्षेत्रीय असन्तुलन के विरुद्ध वह अपने सुझाव देते रहते हैं ।

पं० पन्त जी के समय से वह सरकार को सुझाव देते रहे हैं कि जिन शिक्षा संस्थाओं का नाम किसी विशेष जाति से जुड़ा हुआ है उन्हें वित्तीय सहायता न दी जाए, ताकि इन संस्थाओं में शिक्षा लेकर विद्यार्थी जन्म के संयोग पर आधारित जाति व्यवस्था तथा ऊंच-नीच से प्रभावित न हो । अतः जब वह 1967 ई० में उत्तरप्रदेश सरकार के मुख्यमन्त्री बने और संविद सरकार बनाई तो शिक्षा संस्थाओं से जातिवाचक नाम को हटाया ।

गरीब तथा दलित वर्गों के लिए चौ० चरण सिंह की पीड़ा सर्वविदित है । पं० पन्थ की सरकार में संसदीय सचिव रहते हुए उन्होंने चपरासियों, सिपाहियों तथा चतुर्थ श्रेणी के अन्य कर्मचारियों के सरकारी काम पर यात्रा-भत्ता चार या छः आने से बढ़ाकर 12 आने प्रतिदिन कराने में सफलता हासिल की । 1954 से मार्च 1959 तक राजस्व मन्त्री रहते हुए इस बात का निश्चित प्रबन्ध करने के लिए कि जिला प्रशासन में चपरासियों की भर्ती में हरिजनों का अनुपात 18% प्रतिशत हो, उन्होंने सरकार तथा राजस्व बोर्ड की ओर से अनेक आदेश निकलवाये । परन्तु सरकारी स्तर पर इसका बहुत विरोध हुआ और आंशिक सफलता ही मिली ।

1953 ई० में चौधरी साहब ने अपने अधीनस्थ विभागों में एक आदेश जारी किया कि चतुर्थ श्रेणी की खाली जगहों को पूरा करने के

लिए सभी खाली नौकरियां अनुसूचित जातियों को मिलें और उन्हें तब तक भरती किया जाता रहे जब तक उनका कोटा 18% न हो जाए।

परन्तु कुछ दिनों के बाद नियुक्ति विभाग ने उस आदेश को संविधान के विरुद्ध बता कर वापस ले लिया। चौ० चरण सिंह के काल में अनुसूचित जाति के एक आदमी को लोक सेवा आयोग का सदस्य बनाया गया।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक : चौ० चरण सिंह हिन्दू-मुस्लिम एकता में विश्वास रखते हैं। कांग्रेस छोड़ने के बाद जब से उन्होंने अपनी राजनीतिक पार्टी अलग बनाई—अपनी पार्टी की ओर से निस्बतन जितने प्रत्याशी उन्होंने (मुसलमान, हरिजन और पिछड़े वर्गों के) दूसरी जातियों के बनाए उतने तथाकथित सवर्ण जातियों के नहीं बनाए। उन्होंने विशेष रूप से जाट बहुल क्षेत्रों से चाहे—मुजफ्फरनगर हो, बुलंदशहर या हापुड़ हो, चाहे मुरादाबाद या बिजनौर हो -अपनी पैदायशी या जन्मजात जाति के व्यक्तियों को प्रत्याशी न बनाकर हिन्दू-मुस्लिम प्रतीक-स्वरूप दूसरे लोगों को सफलता दिलवाई।

उनके मुख्यमन्त्री-काल में कोई हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा उत्तर प्रदेश में नहीं हुआ, जबकि उसी समय अन्य प्रान्तों में गम्भीर साम्प्रदायिक झगड़े हुए।

भ्रष्टाचार और अनुशासनहीनता : भ्रष्टाचार के वह शत्रु हैं। कभी भी उन्होंने इन सामाजिक बुराइयों को प्रोत्साहन नहीं दिया। माल मन्त्री रहते हुए उन्होंने अनुशासनहीनता पर ही माल विभाग से पटवारियों को इसी बात पर बरखास्त किया था कि वह अपनी मांगें विचार-विमर्श द्वारा न मनवाकर धौंस-पट्टी और अनुशासनहीनता द्वारा सरकार पर थोपना चाहते थे।

दूसरी बात यह है कि अनुशासनहीनता वह सरकारी कर्मचारियों का ही अवगुण नहीं मानते बल्कि अपने साथियों तक में वह अनुशासन देखना चाहते हैं। 1968 ई० में संयुक्त विधायक दल की सरकार के समय श्रीमती गांधी को बनारस में जलसे को सम्बोधित करने आना था। राजनारायण और उनके सोशलिस्ट साथी प्रधानमन्त्री श्रीमती

इन्दिरा गांधी को गिरफ्तार कराना चाहते थे। क्योंकि इन्दिराजी ने दिल्ली में उनके दो साथियों को दफा 144 के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया था। संसोपा के उस समय संविद में 45 मेम्बर थे। चौधरी साहब ने उन्हें सूचित किया कि श्रीमती गांधी की गिरफ्तारी की अनुमति वह नहीं देंगे, और संसोपा के नेताओं को उन्होंने जेल भेज दिया। इस प्रकार जब उन्हें पता चला कि संसोपा नेता सरकार में परेशानियां पैदा कर रहे हैं तो उन्होंने मुख्यमन्त्री पद से इस्तीफा दे दिया।

अनुशासन के मामले में बिना लाभ-हानि देखे वह कठोर कदम उठाते हैं—वह चाहे दल का मामला हो या सरकार का। आये दिन अपनी पार्टी के किसी न किसी सज्जन को वह पार्टी से इसलिए निष्कासित करते हैं कि उसने अनुशासन तोड़ा या भ्रष्ट आचरण से पार्टी को हानि पहुंचाई।

अपने मुख्यमंत्री-काल में इस नीति के अनुसार उन्होंने कई विषयों में अदालतों में चल रहे मुकदमों को वापस लेने से इन्कार कर दिया था, जैसे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रों के विरुद्ध दंगा, फसाद तथा सिनेमा की सम्पत्ति को आग लगाने का मामला, बलरामपुर के एक विद्यालय के छात्रों के विरुद्ध दंगे का मामला, हमीरपुर के एक विधायक के विरुद्ध कत्ल का मामला जिसके लिए उन पर राजनीतिक दबाव भी आये। परन्तु वह अपने सिद्धान्त से नहीं गिरे। इतना ही नहीं, हजरत गंज के चौराहे पर कुछ युवक साईकिल सवारों ने तैनात ट्रैफिक सिपाहियों के साथ मार-पीट की और नियमों का उल्लंघन किया अतः इस पर पुलिस ने उन छात्रों का चालान कर दिया। उनमें से एक लड़का किसी आयोग द्वारा राजपत्रित कर्मचारी के चुनाव में चुन लिया गया था अतः पुलिस उसके चरित्र के बारे में जाँच-पड़ताल कर रही थी। चौ० साहब उस समय गृह मन्त्री थे अतः उनसे उनके एक सहयोगी तथा छात्र के परिवार के पैरोकारों ने बताया कि उक्त छात्र एक विधवा का पुत्र है। यही उस स्त्री का एक सहारा है अतः उसे माफ कर दिया जाये। चौ० साहब ने अनुशासन के नाम पर केवल इस शर्त पर छात्र को क्षमा करना स्वीकार किया कि वह छात्र उन सिपाहियों से क्षमा मांगे।

चौधरी साहब ने अपने गृहमन्त्री-काल में हर आदमी को बता दिया था कि बेईमान व भ्रष्ट कर्मचारियों के बारे में कोई भी सिफारिश नहीं सुनी जाएगी।

1958-59 ई० में उन्हें केवल चार महीने सिंचाई व ऊर्जा विभाग भी देखने का अवसर मिला अतः उन्होंने इस छोटे से काल में अनेक भ्रष्ट इन्जीनियरों एवं ठेकेदारों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की।

1979 ई० जब जनता पार्टी में फूट पड़ रही थी तो कुछ संसद सदस्यों ने मोरारजी के लड़के पर भ्रष्टाचार के दोष लगाये। इसके बदले में उसके साथियों ने चौ० चरणसिंह के परिवार तथा रिश्तेदारों पर भी इसी प्रकार के दोष लगाये। अतः चौ० चरणसिंह ने सुझाव दिया कि अदालत द्वारा जांच कराई जाये। उसमें चाहे कोई कितने बड़े पद वाला अधिकारी क्यों न हो, दोषी को सजा दी जाये। परन्तु मोरारजी देसाई ने मांग स्वीकार नहीं की और यह मामला एक कमीशन को सौंपा जिसका कुछ भी परिणाम नहीं मिल सका।

अतः सच्चाई, ईमानदारी, हिन्दू-मुस्लिम एकता, हरिजन व पिछड़ी जातियों से प्रेम, तथा छुआछूत की बीमारी को वह एक अभिशाप समझते हैं। कुछ स्वार्थी राजनेता, भ्रष्ट अधिकारी तथा पूंजीपतियों के गिरोह उन्हें अछूत तथा हरिजन विरोधी कहते हुए नहीं थकते अतः उनके सामाजिक जीवन को कलंकित करते हैं। यह उन लोगों की या तो स्वार्थ-सिद्धि हेतु कोई मनोकामना है या वह चौ० साहब के चरित्र को समझने में असफल रहे हैं जो आदमी दल छोड़कर जाते हैं वही उन पर जातिवादी होने का आरोप लगाते हैं। क्या मैं उन लोगों से पूछ सकता हूं कि जब आप दल में आये थे उस समय आपको यह जानकारी नहीं थी? उस समय तो आप लक्ष्मण और हनुमान थे। और चौ० चरण सिंह राम के तुल्य थे।

परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति इसे उलटा समझता है। जो लोग उन पर जातिवादी होने का दोष लगाते हैं या हरिजन विरोधी होने का ढोल पीटते हैं, वह स्वयं इस बीमारी से पीड़ित हैं।

लखनऊ के दैनिक अंग्रेजी पत्र 'नेशनल हैरल्ड' के सम्पादक ने 25

दिसम्बर 1966 ई० के अपने एक लेख "खेल या जुआ" में चौ० चरण सिंह के बारे में लिखा था। पत्र के अनुसार "इस प्रकार की राजनीति एक अनिश्चित, गन्दा, घातक तथा व्यर्थ खेल है। यह स्वाभाविक है कि राजनीतिक जीवन अस्थिर होता है, जिसे बहुतों को भुगतना पड़ता है। इसके बहुत से उदाहरण हैं। श्री चरण सिंह में काफी गुण हैं, लेकिन उनके बारे में कोई नहीं सोचता। क्योंकि इसके पीछे राज्य की प्रमुख राजनीतिक जातियों—ब्राह्मण, बनिया, क्षत्रिय या अनुसूचित जातियां—की जाति-शक्ति नहीं है।" अर्थात् स्वार्थी राजनीतिज्ञ जातिवाद के सहारे अपनी कुर्सी स्थिर रखते हैं जिसे चौधरी चरण सिंह जी पसन्द नहीं करते और न ही वह जातिवाद का जहर फैलाते हैं जैसा कि अन्य लोग उनके बारे में भ्रम फैलाते हैं।

महिला समाज और चौधरी साहब

वह महिला के समान अधिकार और भावनात्मक स्वाधीनता पर अधिक बल देते हैं। नारी की रक्षा वह उतनी ही महत्त्वपूर्ण समझते हैं जितनी देश के अन्य कमजोर वर्गों की। वह दहेज विरोधी अभियान के समर्थक हैं। यहां तक कि उन्होंने अपने इकलौते पुत्र के विवाह में केवल 1 रुपया दान में लिया तथा आर्य पद्धति से वह विवाहों में लड़के व लड़की की पारस्परिक सन्धि को महत्त्व देते हैं। वह वर और वधू की छांट उन पर ही छोड़ने के पक्ष में हैं।

समाज द्वारा नारी पर वह अत्याचार सहन नहीं करते। अभी हाल ही में बागपत काण्ड इसका ज्वलंत उदाहरण है। कुछ पुलिस कर्मचारियों ने एक नारी के साथ बागपत नगर (जिला मेरठ) में अत्याचार किये। उसे नंगी बाजार से होकर पुलिस थाने ले जाया गया तथा वहां पर उसके साथ बलात्कार किया। इसी विरोध में उनके आह्वान पर कई हजार आदमी जेल गये। सत्याग्रह किये गये। लाठियां खाईं तथा कचहरियों आदि के काम बन्द किये गये। यह सब कुछ एक नारी के साथ अन्याय के विरोध में चरण सिंह के आह्वान पर हुआ।

चौ० चरण सिंह नारियों को घर तथा परिवारों की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं करना चाहते। उनके विचार में नारी ही बच्चों की

पहली अध्यापिका होती है। अगर घर की स्त्री समझदार है, अपने कार्य में निपुण है, नियमित रूप से धार्मिक अनुष्ठान करती है, तो घर के लोग, उसके बच्चे अवश्य ही अनुशासित, समझदार तथा धर्म-कर्म पर चलने वाले होंगे। नारी की दी हुई शिक्षा घर और बाहर दोनों के लिए लाभदायक होगी।

परन्तु चौ॰ चरण सिंह के विरोधी लोग निर्वाचन के समय उन पर नारी विरोधी होने का इल्जाम लगाते हैं। हम आज शहरों तथा नगरों में देखते हैं नारी जो नौकरी आदि अनेक धन्धों में लिप्त है। कितनी परेशानी उठाकर वह दोनों कार्य कर पाती है। और अगर वह दुखी नहीं है तो उसके घरवाले दुखी हैं। अतः चौ॰ साहब की दृष्टि में राष्ट्र को दृढ़ करने के लिए स्त्री ही पहले घर की इकाई को दृढ़ कर सकती है।

'सत्यार्थप्रकाश' के चौथे समुल्लास में स्वामी दयादन्द ने गृहस्थ धर्म के प्रसंग में लिखा है, "पुरुष की आज्ञानुकूल घर के सारे काम स्त्री और बाहर के सारे काम पुरुष के अधीन होते हैं।"

अतः जातिवाद के विरोधी होने के नाते चरण सिंह अपने जन्म-जात उन लोगों को भी प्रोत्साहन नहीं दे सके जिन्हें उनको दे देना चाहिए था।

उन्होंने कभी किसी व्यापारी तथा पूंजीपतियों से कभी कोई धन-राशि चुनाव आदि के निमित्त नहीं ली। अतः कोई भी व्यापारी उन पर हावी नहीं हो सका। अतः उनका सामाजिक जीवन निष्कलंक है।

चौ॰ चरण सिंह जाट घर में पैदा हाकर कभी भी उन्होंने जन्म-जात के किसी आदमी को कोई विशेष लाभ नहीं पहुंचाया। वास्तव में जाट जातिवाद और साम्प्रदायिकता में विश्वास नहीं रखता। जाटों को किसी धर्म और जाति से कोई द्वेष नहीं होता। इस जाति के लोग आज भी हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैनी, आर्यसमाजी और वैश्य धर्म को मानने वाले हैं। इस जाति के लोग जात और बिरादरी पर भी विश्वास नहीं रखते। सर एम॰ सी॰ प्रधान ने 'पोलिटीकल सिस्टम ऑफ नार्दर्न जाट इन इण्डिया' (आक्सफोर्ड, 1966, पृ॰ 50) पर

लिखा है कि "The Jats engaged for sport in wrestling maches with the lowly sweeper." अर्थात् जाट और भंगियों के रस्सकाशी के खेल पच्छिमी जिलों में देखे जा सकते हैं। इसलिए किसी जाट पर जातिवाद का लांछन नहीं लगाया जा सकता। चौ० चरण सिंह जी तो स्वयं आर्य समाजी हैं। उन्हें कलंकित नहीं किया जा सकता। वे जात-बिरादरी के कट्टर विरोधी हैं।

चौधरी चरणसिंह और उनके जीवन की राजनीतिक गतिविधि

वैसे तो किसान के शोषण के विरुद्ध संघर्ष अब से एक हजार वर्ष पहले मुस्लिम आगमग काल में ही आरम्भ हो गया था। परन्तु औरंगजेब के समय से तो किसानों के संगठनों ने क्रान्तिकारियों का रूप धारण कर लिया था जिसके अन्दर दो तथ्य छुपे हुए थे : राष्ट्र-प्रेम और किसान की आर्थिक दशा। अतः वह क्रान्तियां कुछ कामयाब और कुछ नाकामयाब रहीं। इसके बाद अंग्रेज काल में स्वतन्त्रता की लड़ाई के साथ-साथ किसान संघर्ष भी होते रहे। कांग्रेस पार्टी जो स्वतन्त्रता की लड़ाई में अग्रणी रही थी वह भी ब्रिटिश काल में समय-समय पर प्रस्ताव करती रही। परन्तु वह प्रस्ताव कार्य रूप में परिवर्तन इसलिए नहीं हो सके कि हमारे कर्णधार किसानों की वास्तविक दशा से परिचित नहीं थे। उनकी शिक्षा विदेशों में हुई थी और ग्रामों की समस्याओं से वह ज्यादा परिचित नहीं थे। इसलिए कांग्रेस पार्टी से आचार्य नरेन्द्रदेव, डा० राममनोहर लोहिया आदि किसान नेताओं को पार्टी छोड़कर सोशलिस्ट पार्टी का निर्माण करना पड़ा था। अतः चौधरी चरणसिंह जी की गतिविधि लिखने से पहले आचार्य नरेन्द्रदेव के उस कथन का उल्लेख करना उचित ही होगा जिसमें उन्होंने उन कारणों पर प्रकाश डाला है जिनकी वजह से आचार्य जी और उनके साथियों को कांग्रेस छोड़नी पड़ी, और फिर चौधरी

साहब को भी।

आचार्य जी अपनी पुस्तक 'राष्ट्रीयता और समाजवाद' में लिखते हैं कि "पं० नेहरू भी कांग्रेस प्लेट फार्म से समाजवाद का प्रचार करते थे। फैजपुर-कांग्रेस में किसानों की समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया गया। अतः 1937 के चुनाव में किसानों ने कांग्रेस का साथ दिया, और कई प्रान्तों में उसकी सरकार बन गई। कांग्रेस पर किसानों का प्रभाव बढ़ा अतः 1942 में अपने 8 अगस्त के प्रस्ताव में कांग्रेस को यह स्वीकार करना पड़ा कि वह किसान मजदूर राज्य स्थापित करेगी। अब हिन्दुस्तान आजाद हो गया है। कांग्रेस एक आन्दोलन था जिसमें अनेक समूह आते रहे।

"कांग्रेस अब जन-आन्दोलन न होकर सरकार बन गई। सरकार हमेशा स्थिरता चाहती है। वह परिवर्तनों से घबराती है। अतः कांग्रेस के सत्ता में आने से अनेक चेहरे सरकार में आये। चूंकि गवर्नमेन्ट में प्रधान सचिव पंडित नेहरू हैं अतः यह कहना गलत होगा कि सरकार नेहरू की वजह से सोशलिस्ट है क्योंकि, उनकी सरकार में पूंजीपतियों के कई सचिव क्यों हैं ? हिन्दू महासभा के एक प्रधान व्यक्ति क्यों हैं ?"

आचार्य जी के अनुसार "कांग्रेस मशीनरी पर जिनका कब्जा है वह पंडित जी के विचार के नहीं पूंजीपतियों के समर्थक हैं। दूसरी बात, यहां कांग्रेस की कोई अर्थनीति नीचे के प्रभाव से ठीक-ठीक नहीं बन पाती। कांग्रेस के नये विधान के अनुसार जन-आन्दोलन अनुशासन के नाम पररुक जायेंगे। अतः महात्मा कांग्रेस अब सरकारी कांग्रेस बन गई। महात्मा जी स्वयं कहते थे कि शतरंज के पैदलों पर तो मेरा अधिकार है परन्तु शतरंज के बड़े मोहरों पर नहीं। इस प्रकार किसान और मजदूरों के पथ-प्रदर्शक समय-समय पर सरकारी कांग्रेस से निकलते रहे। चौधरी साहब भी इसी घुटन के कारण सरकारी कांग्रेस से बाहर आये।"

अतः चौधरी चरणसिंह जी ने भी मन्त्री पद को हमेशा जन-सेवा का एक माध्यम माना, न कि लक्ष्य-प्राप्ति। वह हमेशा अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत रहते हैं। अतः जब भी उन्हें दिखाई दिया कि जनहित

के विरुद्ध कोई कार्य हो रहा है तो वह सरकार से अलग होने में पल-भर भी हिचक नहीं दिखाते थे। उन्होंने मार्च 1947, जनवरी 1948, अगस्त 1948, मार्च 1950, जनवरी 1951, नवम्बर 1957, अप्रैल 1959, तथा अगस्त 1953 ई० में त्यागपत्र दिये।

चौधरी चरणसिंह ने 1967 ई० में कांग्रेस से अलग होकर संविद सरकार की अध्यक्षता की और अपनी एक पार्टी भारतीय क्रांतिदल के नाम से बनाई। विरोधियों ने उन्हें दलबदलू, कुर्सी का भूखा, चेयरसिंह आदि नामों से सम्बोधित किया। चौधरी साहब ने मुख्य मन्त्री बनने के लिए कांग्रेस से इस्तीफा नहीं दिया था बल्कि उसके पीछे कितने ही कारण इकट्ठा हो गये थे। वह चाहते थे कि चन्द्रभान गुप्ता जिसके मुकाबले में स्वयं चौधरी साहब कांग्रेस पार्टी के मुख्य मन्त्री के प्रत्याशी थे परन्तु उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया था। अतः वह सर्वसम्मति से सी० बी० गुप्ता को मुख्य मन्त्री बनाना चाहते थे परन्तु साथ में वह भ्रष्ट और बदनाम चेहरों को मन्त्रिमंडल में देखना नहीं चाहते थे। परन्तु गुप्ता जी इस पर रजामन्द नहीं हुए। अतः चौधरी साहब ने नैतिकता के नाते कांग्रेस से अलग होने में ही यश समझा।

इसके साथ-साथ कांग्रेस में जातिवादी घृणा और किसानों से द्वेष अपना अलग स्थान बना चुका था। 1964 ई० में मेरठ जिला कांग्रेस कमेटी उनके प्रतिद्वंद्वियों के हाथ में आ गई तथा द्वेषवश किसी भी समिति में उनका नाम तक नहीं भेजा।

इसके साथ-साथ वह बहुत दिनों से कांग्रेस में घुटन महसूस कर रहे थे। ज्यों-ज्यों गरीबों के हमदर्द कांग्रेस से बाहर निकल रहे थे त्यों-त्यों यह पार्टी पृथकतावादी, पूंजीपति तथा किसान विरोधी लोगों की पार्टी बनती जा रही थी। धर्मनिरपेक्ष, समाजवाद तथा 'गरीबी मिटाओ' के झूठे नारों की आड़ में जाति-पांति को बढ़ाया जाने लगा। हरिजन और सवर्ण कही जाने वाली जातियों में खाई बनाई जाने लगी। गरीबी और बेरोजगारी को केवल जाति के मापदण्ड से ही मापा जाने लगा। 1967 के विधान सभा चुनावों में प्रत्याशी चुनते समय जाति की संख्या को ध्यान में रखा गया। शहरी विकास के नाम पर

ग्रामीण क्षेत्रों की उपेक्षा की जाने लगी। प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय मन्त्रिमण्डलों में किसी विशेष जाति को प्राथमिकता दी जाने लगी। इन सब कारणों से चौधरी साहब को विवश होकर अपनी अलग पार्टी बनानी पड़ी। जिसके विरोध में उन पर अनेक प्रकार के आरोप लगाये गये। सचाई तो यह है कि चौधरी चरणसिंह से पंडित नेहरू उसी समय से ही नाराज थे जिस समय वह कांग्रेस की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में सहकारिता के विरुद्ध बोले थे। उन्होंने अपने भाषण में वर्तमान परिस्थितियों में सहकारिता को देश के लिए घातक बताया था और भ्रष्टाचार तथा कुनबापरस्ती बढ़ने की ओर इंगित किया था। परिणामस्वरूप पंडित नेहरू ने उनकी राजनीतिक शक्ति को घटाने का हमेशा प्रयास किया और सी० बी० गुप्ता को तीन बार उत्तर प्रदेश का मुख्य मन्त्री बनाया। कामराज योजना में जब सी० बी० गुप्ता को हटाया गया तो श्रीमती सुचेता कृपलानी को उत्तर प्रदेश से बाहर से लाकर मुख्य मन्त्री पद पर आसीन कराया। यह सब कुछ इसलिए किया गया कि चौधरी चरणसिंह, किसान का बेटा, उत्तर प्रदेश का मुख्य मन्त्री न बन सके। इस प्रकार अनेक कठिनाइयां उनके रास्ते में हमेशा पैदा की जाती रहीं। अतः उस घुटन का अहसास चौधरी साहब को उस समय पीड़ा पहुंचाने वाला बना जबकि तीसरी बार सी० बी० गुप्ता को मुख्य मन्त्री बनाया गया और बदनाम तथा भ्रष्ट लोगों को मन्त्री बनाया गया। अब चौधरी चरणसिंह के लिए कोई चारा नहीं रह गया था कि वह कांग्रेस में ज्यादा समय तक बने रहते।

चौधरी चरणसिंह के चरित्र पर टीका करने वालों के लिए केवल यही जवाब काफी है कि अंग्रेजी की पुस्तक 'पाल-आर० ब्रास' जिसका हिंदी शीर्षक है 'एक भारतीय राज्य में गुटबन्दी राजनीति : उत्तर प्रदेश में कांग्रेस पार्टी' (1966) से विदित होता है कि वह हर हालत में किसान के लिए सोचते हैं। पुस्तक के अनुसार "चरणसिंह केवल एक बुद्धिजीवी ही नहीं, वह एक राजनेता की भी शक्ति रखते हैं। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण है जिसका उपयोग उन्होंने उत्तर प्रदेश की कृषि समस्याओं का अध्ययन करने में किया है। चरणसिंह भूमिधारी किसानों

के बारे में उत्तर प्रदेश के प्रमुख भारत विद्या विशेषज्ञ हैं।" (पृष्ठ 139)

फिर लेखक कहता है, "चरणसिंह में एक आदर्श भारतीय गुट-नेता होने के बहुत से गुण हैं। वे अपनी बौद्धिक योग्यता के लिए प्रसिद्ध हैं तथा सत्यनिष्ठा के लिए ख्यात हैं। किसी ने उन पर अब तक भौतिक लाभ उठाने की इच्छा का लांछन नहीं लगाया।" (पृ० 141)

अत: विरोधियों के यह लांछन कहां तक सही हो सकते हैं ? केवल द्वेषवश, ईर्ष्यावश तथा पक्षपात द्वारा ही उनके राजनीतिक जीवन तथा चरित्र को दूषित किया जाता रहा।

चौ० चरणसिंह सभी राष्ट्रीय आन्दोलनों में सबसे आगे चले। स्व० श्री जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति में वह भागीदार रहे।

संयुक्त विपक्षी दल बनाने के लिए उनकी ही प्रेरणा ने काम किया। उन्होंने 1977 ई० में कई पार्टियों को मिलाकर जनता पार्टी के नाम से एक पार्टी बनायी तथा इमरजेन्सी उठने के बाद 1977 में संसद के जो चुनाव हुए उनमें चौधरी साहब प्रत्याशी चुनने के लिए चुनाव कमेटी में नियत किये गये।

परन्तु चौधरी साहब ने अपने घटक भारतीय क्रान्तिदल की उपेक्षा करके केवल एक पार्टी एक निशान के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्याशी चुने। जनता पार्टी का भारी बहुमत आया जिके प्रभाव से जनता पार्टी के कुछ घटकों की भूलवश जनता में अपने प्रभाव का सही मूल्यांकन नहीं हो सका और जनता पार्टी की सरकार उसके जन्मदाता, परामर्शदाता तथा किसान नेता चौ० चरणसिंह की छबि को राजनीतिक स्तर हर बिगाड़ने में लग गयी। किसानों के साथ अन्याय होने लगा। उत्तरी भारत की मुख्य उपज गन्ना प्रधान मन्त्री मोरारजी देसाई की कृपा से खेतों में जलाया जाने लगा। चीनी का व्यापार विदेशों से बन्द कर दिया गया। ऐसा करके वह चौ० चरणसिंह पर बड़ा आघात करना चाहते थे, क्योंकि चौधरी जनता सरकार के भागीदार थे। नियुक्तियों में—चाहे राज्यपाल की हो अथवा राजदूत की हो तथा उच्च अधिकारियों की नियुक्ति हो—चौ० चरणसिंह को

पृष्ठभूमि से अलग किये जाने का प्रयत्न किया जाने लगा। जनता सरकार के मन्त्री आये दिन विदेशों में घूमने लगे, रुपया पानी की तरह बहाया जाने लगा, सरकारी मशीनरी पर कन्ट्रोल ढीला हो गया। जनता पार्टी के कर्मठ और ईमानदार आदमियों में असन्तोष की भावना जाग उठी। किसानों की कोई सुनने वाला नहीं था। प्रधानमन्त्री की कृपा से जमाखोर और सट्टेबाज सक्रिय हो गये। गुजरात के दाल, जीरा और कपास व्यापारी रातोंरात धनवान बन गये। आन्ध्र के तम्बाकू उत्पादक किसानों, उत्तर प्रदेश के आलू पैदा करने वालों को हानि हुई तथा उत्तरी भारत की मुख्य उपज गन्ना सड़कों पर मिट्टी के भाव बिकने लगी। अतः विवश होकर चौ० साहब को प्रधानमन्त्री की मुखालफत में आगे आना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि जब चौधरी चरणसिंह बीमार थे और दिल्ली के निकट सूरज कुण्ड पर स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे, तो उनसे मोरारजी ने इस्तीफा मांग लिया। चौ० साहब ने बिना हिचक के इस्तीफा दे दिया। परन्तु पूरे देश में कृषक वर्ग में एक चेतना जागी। 23 दिसम्बर 1978 ई० को दिल्ली में 15 लाख से भी अधिक किसान इकट्ठे होकर बोट क्लब पर प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई से त्यागपत्र मांगने पर मजबूर हो गये। उसी दिन से जनता पार्टी में विघटन की शुरुआत हुई। जुलाई 1979 ई० की 15 तारीख को प्रधानमन्त्री मोरारजी को इस्तीफा देना पड़ा तथा चौ० चरणसिंह को प्रधानमन्त्री बनाया गया। अगस्त से पहले ही चौ० चरणसिंह को प्रधानमन्त्री बना दिया गया था। परन्तु वह दिन किसान चेतना के इतिहास में स्मरणीय रहेगा जिस दिन किसान के बेटे ने प्रधानमन्त्री बनकर लाल किले पर झण्डा फहराया।

इस देश का किसान चौ० चरणसिंह की प्रेरणा से जाग उठा है। आज इस पृष्ठ को लिखते समय हम समाचार-पत्रों में पढ़ रहे हैं कि महाराष्ट्र के किसानों का कूच, आन्ध्र तथा तमिलनाडु के किसानों का संघर्ष, बिहार और हरियाणा में किसान आन्दोलन के पथ पर, उत्तर प्रदेश में किसानों की गन्ना हड़ताल, सरकार द्वारा उनको दबाने के लिए नापाक हथकण्डों का प्रयोग। कांग्रेस (ई) द्वारा उनका विरोध

आदि अनेक घटनायें हमारे सामने आ रही हैं। किसान की इस चेतना को जगाने में चौ० चरणसिंह का हाथ है। चौ० चरणसिंह के जीवन का लक्ष्य, कार्य, कर्म तथा दिनचर्या है किसान के बारे में सोचना, उन्हें संगठित करना, तथा अपनी मांगों के बारे में जागृति पैदा करने में वह किसान आन्दोलन के प्रवर्तक हैं। उन्हीं की प्रेरणा से पूरे देश में एक 'किसान सम्मेलन' नाम का संगठन 1978 में बनाया गया जो किसानों के शोषण के विरुद्ध अपनी लड़ाई लड़ता है। देश का पूंजीपति इन किसानों के संगठन को देखकर बेचैन हो गया। उसके पिछलग्गू समाचार-पत्र भी किसानों की मांगों के विरोध में चिल्लाने लगे हैं। उपभोक्ताओं और शान्ति व्यवस्था तथा देश की आर्थिक हालत की दुहाई देकर वह जनता को गुमराह कर रहे हैं।

अतः समाजवादी कही जाने वाली कांग्रेस (ई) को अपने समर्थकों से कहना पड़ा कि कोई भी कांग्रेसी इस किसान आन्दोलन में भाग न ले। जिसका सारांश इस प्रकार है :

'हिन्दुस्तान' दैनिक समाचार-पत्र 22-12-80 ने (प्रे० ट्र०) के हवाले से समाचार छापा है और लिखा है कि "बम्बई 21 दिसम्बर (प्रे०ट्र०) कांग्रेस (ई) के महासचिव एस० एस० महापात्र ने आज यहां कहा कि देश के विभिन्न भागों में इन दिनों चल रहे किसान आन्दोलन का यदि कोई कांग्रेस (ई) नेता समर्थन करेगा तो कांग्रेस उच्च सत्ता उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करेगी।"

उन्होंने संवाददाताओं को बताया कि राज्यस्तरीय कांग्रेस (ई) समितियों को निर्देश भेजे जा चुके हैं कि यदि ऐसा कोई मामला जानकारी में आवे तो कांग्रेस उच्च सत्ता को सूचित करें। दूसरी ओर वही कांग्रेस (ई) सरकार दिल्ली में बनावटी किसान रैली करती है।

यह सब कुछ चौ० चरणसिंह जी की ही राजनीतिक सूझ-बूझ और किसान विचारधारा का ही परिणाम है जिन्होंने झूठे और बनावटी किसान समर्थकों का नकाब हटाया।

चौ० चरण सिंह
और उनकी आर्थिक नीति

सन् 1939 ई० में चौ० चरण सिंह ने निजी सदस्य के तौर पर विधान सभा में कृषि पदार्थों की बिक्री से सम्बन्धित एक विधेयक प्रस्तुत किया। उन्होंने कृषि पदार्थों की बिक्री संबंधी एक लेख भी लिखा, जिसे दिल्ली के समाचार पत्र हिन्दुस्तान टाइम्स ने अप्रैल 1939 में दो भागों में छापा। देश के अन्य कई प्रान्तों में इस सुझाव को ग्रहण किया गया। पंजाब ने तो 1940 ई० में एक मण्डी एक्ट भी बनाया गया। परन्तु उत्तर प्रदेश में। 1964 ई० तक इस प्रस्ताव पर कोई कार्यवाही नहीं हो सकी तथा पार्टी और कांग्रेस सरकार ने यह कहकर आनाकानी की कि किसान अब खुशहाल हो गया है तथा उसमें व्यापारियों का सामना करने की शक्ति उत्पन्न हो चुकी है।

(2) जून 1939 में उन्होंने 'किसान की मिल्कियत : जिसकी करनी उसकी भरनी' नामक एक पुस्तक लिखी तथा दूसरी पुस्तक उसी समय 'जोतों की एक निश्चित न्यूनतम सीमा के नीचे उपविभाजन पर रोकथाम' शीर्षक से लिखी जिसके द्वारा भूमि जोतने वाले को उस भूमि का अधिकार मिले। जिसे वह जोतता है और सरकारी कोष में वह अपने लगान का कुछ गुना जमा करे। जो उसके भूस्वामी को मिले।

(3) 1939 में चौ० साहब ने कांग्रेस विधायक दल की बैठक में प्रस्ताव रखा कि किसान के बेटों को नौकरियों में 50% स्थान मिले। 1947 ई० में उन्होंने इस विषय पर लेख भी लिखा। परन्तु इस प्रयत्न का कोई लाभ नहीं मिला चूंकि देश के सार्वजनिक जीवन में गैर-किसान लोगों का प्रभाव था।

(4) किसानों को ऋण-दबाव से मुक्त करने के लिए एक बिल का मसौदा बनाने में काफी मेहनत की तथा 1939 ई० में 16 पृष्ठों की एक पुस्तिका और लेख लिखा जो नेशनल हैरल्ड में छपा। इस बिल से कर्जदार किसानों को काफी राहत मिली। यह देखकर, चौ० साहब को काफी धक्का लगा कि कांग्रेस समाजवाद दल के जो बड़े नेता सार्वजनिक सभाओं में किसानों और मजदूरों के रक्षक बनते हैं उन्होंने समितियों की बैठकों में साहूकार समर्थक रुख अपनाया।

(5) भूमि सुधारों के जन्मदाता चौधरी चरणसिंह ने उ० प्र० में जो भूमि सुधार किये उनके बाद आज तक बचे हुए काम पूरे नहीं हो सके, और भारत के अन्य भागों में तो उसका नाम तक नहीं लिया गया। जिनको विस्तार से लिखना कठिन है और चौ० साहब के भूमि सुधारों पर अलग से एक विस्तृत ग्रन्थ बन सकता है अतः संक्षेप में लिखना होगा :

(अ) 1 जुलाई 1952 ई० में उन्होंने 'जमींदारों का खात्मा' नामक एक कानून बनाया जिसके द्वारा भूमि जोतने वाला किसान भूमिधर कहलाया। ऐसी भूमि पर जहां वृक्ष लगे हुए हों, कुएं बने हों या मकान बने हों और उन पर जोतदार का अधिकार हो, तो उस भूमि का वही मालिक है जो उस समय काबिज है। उसे उपयोग करने, हस्तान्तरण करने को अधिकार दिया गया।

(ब) सभी काश्तकारों को उन जोतों का सीरदार (अर्थात हल चलाने वाले) घोषित किया गया। जिन पर वह हल चलाते रहे हैं। उन्हें कृषि कार्यों बागबानी तथा पशुपालन के लिए भूमि के उपयोग का पूरा अधिकार दिया गया। परन्तु भूमि के हस्तांतरण का अधिकार सीरदार को नहीं दिया गया।

.(स) ऐसे सीरदारों को जिन्होंने लगान 10 गुना सरकारी खजाने

में जमा कर दिया है, भूमि का भूमिधर बना दिया गया और उनके लगान में 50% कटौती की गयी।

(द) सभी भूमि के पहले मालिकों को उनकी भूमि के बदले में मुआवजा दिया गया तथा छोटे जमींदारों को इसके साथ-साथ पुनर्वास अनुदान भी दिया गया। जमींदारा खात्मा में यह गारन्टी दी गई थी कि भूमि का लगान 40 वर्षों तक नहीं बढ़ाया जायेगा। परन्तु 1962 ई० में 50% बढ़ाने का प्रस्ताव तत्कालीन मुख्यमन्त्री ने रखा जिसका चौ० चरणसिंह ने विरोध किया।

(क) जिस समय पूरे देश में भूस्वामियों को उनकी व्यक्तिगत खेती के लिए कुछ सीमा निश्चित की गई तथा काश्तकारों की बेदखली की जा रही थी तो योजना आयोग ने उत्तर प्रदेश सरकार से भी ऐसा ही करने को कहा। परन्तु चौ० साहब ने योजना आयोग का प्रस्ताव अमान्य करके 1954 ई० में बावजूद कांग्रेस के उच्च नेताओं के विरोध करने पर भी कानून में संशोधन किया और किसानों को माल के कागजात में, उपकाश्तकार, खुदकाश्त या सिकमी या अधिवासियों का दर्जा दिया गया या सीरदारी के अस्थायी अधिकार दिये।

इन अधिकारों से हरिजनों को अधिक लाभ हुआ जिनकी संख्या कुल अधिवासियों में एक तिहाई थी।

पहाड़ी इलाकों में भी गैर-मौरूसी काश्तकारों को जिन्हें 'सीरतन' कहा जाता था जिनमें सभी किसान अनुसूचित जातियों के थे, सीरदार का दर्जा दिया तथा जो अपनी जोतों से बेदखल कर दिये गये उन्हें दोबारा कब्जा दिलाने का नियम बनाया गया। कब्जा लेने की अवधि 6 महीने से बढ़ाकर एक वर्ष की गयी तथा तहसीलदारों को आदेश दिये कि जहां पर जिसका कब्जा पाया जाये वहीं पर उसका नाम तुरन्त कागजात माल में चढ़ा दिया जावे। नियम बनाकर सभी ग्रामवासियों को, चाहे वह काश्तकार हो, शिल्पी हो अथवा मजदूर हो—उन्हें अपने मकानों के साथ-साथ कुआं और साथ में जुड़ी हुई भूमि पर पेड़ लगे हों तो उनका स्वामी उन्हीं को बनाया गया जिन्हें जमींदार 'रियाया' कहते थे।

(7) कृषि भूमि से बची हुई भूमि चाहे उस पर पेड़, कुआं हो तथा बंजर आदि भूमि को ग्राम पंचायत को प्रबन्ध तथा विकास के लिए सौंपा गया और उसकी आय से जो आमदनी हो उसे ग्राम उत्थान में लगाने के लिए आदेश दिये गये। अतः ग्राम इकाई में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं रहा जिसको मकान, कुआं या रसोई बनाने के लिए दूसरे व्यक्तियों पर निर्भर रहना पड़े।

दोबारा जमींदार न उत्पन्न हो, उसके लिए तथा उसकी स्त्री और नाबालिग बच्चों के पास 12.5 एकड़ से ज्यादा जमीन न हो तथा लगभग 3 एकड़ से कम भूमि तकसीम नहीं हो सकेगी। और अगर उसे कोई बेचना चाहेगा तो उस भूमि की आय सब हिस्सेदारों में बंटेगी।

कोई भी जमींदार या साहूकार किसी भी धन-डिगरी का अमल करने में किसान का घर कुर्क नहीं करा सकेगा।

किसी सरकारी कारखाने, स्कूल, अस्पताल के लिए कोई भी कृषि-भूमि जब तक अधिग्रहण नहीं की जावेगी तब तक आधे मील तक अन्य कोई भूमि जो कृषि के अयोग्य हो, मिल सकती है।

किसानों के लिए चकबन्दी कार्यक्रम बनाया जिससे किसान अपने खेत एक जगह इकट्ठा करके सिंचाई तथा अन्य उन्नतिशील उपकरणों द्वारा उन्नति कर सकें। इस स्कीम का उनके प्रगतिशील साथियों ने बहुत विरोध किया। और 1959 ई० में चौधरी साहब के त्यागपत्र देने पर उनके उत्तराधिकारी ठाकुर हुकम सिंह ने चकबन्दी योजना को बन्द कर दिया। परन्तु एक महीने के अन्दर ही किसानों के विरोध के कारण दोबारा चकबन्दी चालू करनी पड़ी। जिसका प्रभाव आज सबके सामने दिखाई दे रहा है। दोनों कार्यक्रमों, जमींदारी खात्मा तथा चकबन्दी योजना, ने किसानों का जितना हित किया उसकी तुलना करना कठिन है। और यह सब चौ० चरण सिंह के ही प्रताप और परिश्रम का फल है। इन दोनों कार्यों से किसान की उपज बढ़ी है। किसान में चेतना आयी, इसके अलावा उन्होंने अन्य भूमि सुधार कार्यक्रम भी किये जिससे किसान उन्नत हो सके।

1954 में उन्होंने भूमि संरक्षण अधिनियम को लागू कराया जिसे

1961 ई० में संशोधित कर, भूमि व जल संरक्षण अधिनियम के नाम से पुकारा गया, जिससे किसान की भूमि जल-कटाव आदि से बचाई जा सके।

किसान की भूमि की शक्ति को नापने के लिए भूमि परीक्षण योजना लागू कराई।

1954 में मवेशी अतिक्रमण अधिनियम के संशोधन का श्रेय इन्हीं को है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश गोहत्या निवारण अधिनियम की तैयारी जिसको 1955 में पूरा रूप दिया तथा 1964 में उत्तर प्रदेश में मवेशी सुधार अधिनियम बनाया—यह सब कुछ चौ० साहब की प्रेरणा का फल है और उनकी उपलब्धियां ही कही जा सकती हैं।

चौ० साहब उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों के किसानों के लिए हमेशा संघर्ष करते रहे। जनवरी 1959 के नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में श्री चरण सिंह ने सहकारी खेती तथा खाद्य पदार्थों के राज्य द्वारा व्यापार के विपक्ष में जोरदार तर्क प्रस्तुत किये। यह दोनों विषय पं० जवाहरलाल नेहरू के अत्यंत प्रिय थे। चौ० चरण सिंह ने कहा कि उत्पादन के लिए भूमि और श्रम को इकट्ठा करके ही उत्पादन बढ़ाया जा सकता है तथा प्रजातन्त्र जीवित रह सकता है। सहकारी खेती से उत्पादन घटेगा तथा अन्न के सरकारी व्यापार से भ्रष्टाचार बढ़ने लगेगा। इसी स्पष्ट भाषण के दण्डस्वरूप उन्हें सन् 1959 में त्याग, पत्र देना पड़ा।

चौ० चरणसिंह जी की गांधीवादी आर्थिक रूपरेखा

चौ० चरणसिंह जहां समाज-सेवी राजनीतिज्ञ तथा कुशल प्रशासक हैं वहां गांधीवादी विचारधारा और अर्थशास्त्र के पंडित भी हैं। उन्होंने देश की प्रगति व उन्नति के लिए विदेशी समाजवाद व पश्चिमी पूंजीवाद को नकारते हुए गांधी जी के बताये हुए आर्थिक मन्त्रों का सहारा लिया है। उन पर आर्थिक क्षेत्र में गांधीवाद की स्पष्ट छाप विद्यमान है। अतः उनकी नीति को लिखते समय उनकी उस पुस्तक का सहारा लेना होगा जो उन्होंने जनता पार्टी के सामने एक विस्तृत

परिपत्र के आकार में रखी थी। चौ० साहब का विचार है कि पार्टी की नीति की व्याख्या महात्मा गांधी के विचारों के अनुसार की जाये। उनका कहना है कि स्वतन्त्र भारत की अर्थनीति के बारे में महात्मा जी बहुत कुछ लिख गये हैं। चौ० साहब जहां समाज और धर्म के मामले में दयानन्द सरस्वती के शिष्य हैं वहां आर्थिक विचारधारा में वे गांधी जी के कट्टर समर्थक हैं। उनके अनुसार "गांधी जी की अर्थनीति इस अर्थ में क्रान्तिकारी है। उसने जनता को अपने आपको अपने प्रयत्नों से जनतन्त्रीय ढंग से ऊपर उठाने की क्षमता को ही, हर काम का, हर कदम का केन्द्रीय बिन्दु बनाने का प्रयास किया। गांधी जी की निगाह में न रुपये का महत्व था और न मशीन का, अगर महत्व था तो 'इन्सान' का। कृषि को दी गयी प्राथमिकता, दस्तकारी और लघु उद्योग को दी गई प्रमुखता, विकेंद्रीकारण व आत्मनिर्भरता पर दिया गया बल। अर्थव्यवस्था चलाने में वर्तमान स्थिति में राजतन्त्र की भूमिका इन सबका एक ही उद्देश्य है कि मौलिक सिद्धान्त को व्यावहारिक तथा वास्तविक बना दिया जाये जिससे जनतन्त्र जनता द्वारा जनता के लिए जनता का ही शासन हो।"

आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका पर वह कहते हैं कि भारत एक अल्प विकसित देश है। बेहद गरीबी का शिकार है। गरीबी का अर्थ, मनुष्यों की वह आवश्यकतायें जिनके अभाव में मनुष्य को जिन्दा रहने में कठिनाई पैदा होती हो। चाहे यह चीजें खेतों में पैदा होती हों या दूसरे क्षेत्रों में। इन सभी चीजों का मूल स्रोत भूमि है।

उनके अनुसार सारी आबादी के लिए सामग्री उपलब्ध करने के साथ-साथ कृषि उपज से ही तेल मिल, कपड़ा मिल, चीनी कारखाना, वनस्पति तथा तम्बाकू मिल आदि चलाने के लिए कच्चामाल मिलता रहना आवश्यक है। कृषि का अर्थ है भूमि का उपयोग और प्रयोग। इस प्रकार जानवरों और पशुओं का पालन-पोषण भूमि द्वारा ही होता है। मनुष्य को इमारती लकड़ी, गोंद, मसाले, खालें व हड्डियां इत्यादि विभिन्न प्रकार की वस्तुएं भूमि से ही प्राप्त होती हैं। इन वस्तुओं से असंख्य उद्योग चलते हैं। इस प्रकार से भूमि से कोयला, लोहा, तेल तथा अन्य प्रकार के खनिज पदार्थ निकलते हैं।

हमारा दुर्भाग्य है कि जो देश 1925 ई० तक खाद्यान्नों का निर्यात करता था, 1943 ई० के बाद उसे आयात करना पड़ा। वह कहते हैं कि 1970 ई० तक हमें अनाज मंगाने के लिए 207.8 करोड़ रुपया प्रतिवर्ष खर्च करना पड़ा, जो 1970-76 तक बढ़कर 441.14 करोड़ वार्षिक हो गया।

उनके विचार से देश का औद्योगिक विकास तभी हो सकता है जब कृषि-विकास हो। लेकिन औद्योगिक विकास पहले हो और बाद में कृषि-विकास हो ; यह नहीं हो सकता जैसा कि देश के नेता समझते हैं।

जब कृषक के पास क्रय शक्ति होगी तभी वह उद्योगों द्वारा निर्मित माल खरीद सकता है तथा शिक्षा, परिवहन, विद्युत, मशीन और औजार, खाद तथा कीटनाशक दवाएं कृषि-उपज बेचकर ही खरीदी जा सकती हैं, और क्रय शक्ति बढ़ सकती है। जहां क्रय शक्ति नहीं बढ़ सकती वहां औद्योगिक समृद्धि नहीं हो सकती।

उनके अनुसार "जहां कृष विकास से एक ओर क्रय शक्ति बढ़ेगी वहां दूसरी ओर मजदूरों को रोजगार के अवसर मिलेंगे।

इसके अलावा छोटी-छोटी अलाभकर जोतों वाले कृषक अधिक आय वाले कामों की तलाश में औद्योगिक क्षेत्रों की ओर बढ़ेंगे तथा छोटी जोतों की संख्या कम होगी। छोटी जोत वाले कुटीर तथा छोटे उद्योगों को सहायक रूप में अपना लेंगे। जब तक कृषि से कामगरों को छुटकारा नहीं मिलता कि वे कृषीतर रोजगार में लग सकें, तब तक देश में न तो आर्थिक विकास हो सकता है और न ही गरीबी मिटेगी। धनवान देशों में जहां अधिक विकास हुआ है, कामगर अधिकतर कृषि को छोड़कर अन्य धन्धों में लगे हैं अतः कृषि कामगरों की संख्या में प्रतिशत घट रही है। उन्होंने आंकड़े देकर बताया है कि अमेरिका में सन् 1890 में 43.1 प्रतिशत लोग लगे हुए थे और वहां पर प्रति व्यक्ति आय 355 डालर थी। जबकि 1965 ई० में 5.1 प्रतिशत लोग कृषि कार्यों में पाये गये तथा देश में प्रति व्यक्ति आय 2 हजार 921 डालर थी। इसके विपरीत भारत में सन् 1971 ई० में 72.5 प्रतिशत व्यक्ति कृषि कार्यों में लगे थे और उनकी आय 353 रु० थी। सन् 1881 ई० में 74.4 प्रतिशत व्यक्ति तथा 197 रुपये प्रति व्यक्ति आय थी।

अतः 100 वर्ष के लम्बे काल में 2 प्रतिशत व्यक्ति ही कृषि कार्यों से अन्य कार्यों में लगे। और 100 वर्ष में करीब चालीस प्रतिशत आय बढ़ी।

चौ० चरण सिंह ने देश के विकास के लिए दो नुक्ता प्रोग्राम बताया है :

1. प्रति एकड़ कृषि उत्पादकता बढ़े और साथ-साथ प्रति एकड़ काम करने वालों की संख्या घटे।

2. **उत्पान बढ़ाने का दृढ़ संकल्प :** जब तक व्यक्तिगत रूप से तथा राष्ट्र के नेताओं द्वारा हमारे मन में यह उत्पन्न न हो जाये कि हमें अपनी आय बढ़ानी है, और पहले से अधिक अच्छे ढंग से काम करना है। तब तक आय नहीं बढ़ सकती।

इसके विपरीत कुछ नेता और बुद्धिजीवी लोग इस बात की हंसी उड़ाते हैं कि बिना उद्योग के कृषि का उत्पादन कैसे बढ़ सकता है। खेती को प्राथमिकता देकर उद्योग को दूसरा स्थान दिया जाये, तो भूमि की सिंचाई के लिए तालाब बनाने होंगे, नहरें खोदनी होंगी, बिजली के कुओं की आवश्यकता होगी। जिनके लिए आवश्यकता होंगी इस्पात सीमेन्ट, लोहे की तथा इनके लिए बड़े-बड़े उद्योग स्थापित करने होंगे। उनकी यह दलील है कि बिना उद्योगों के कृषि उत्पादन में वृद्धि की आशा करना गलत है।

चौधरी साहब कहते हैं कि यही दृष्टिकोण है जो कि भारत की बर्बादी के लिए जिम्मेदार है। वह यह तो मानते हैं कि बिना उद्योगीकरण के कृषि की उत्पादकता बढ़ाने में सहायता नहीं मिलेगी। परन्तु साथ ही यह मानना होगा कि कृषि के विकास से ही औद्योगिक व अन्य कृषीतर श्रमिकों को साधन मिलेंगे। उद्योगों को कच्चा माल मिलेगा। विदेशों से पूंजीगत माल मंगाने के लि० विदेशी मुद्रा मिलेगी। उद्योगों के उत्पादन के लिए घरेलू मण्डी बनेगी और उद्योग, परिवहन व वाणिज्य के लिए श्रमिक मिलेंगे।

वह कहते हैं कि उद्योग के विकास में कृषि उत्पादन की कमी ही रुकावट बनी हुई है। कृषि व उद्योग दोनों एक दूसरे के विकास के लिए कारण-कारक हैं। परन्तु कृषि को प्रथम स्थान इसलिए देना होगा कि आदमी बिना औद्योगिक वस्तुओं के काम चला सकता है परन्तु जीवित

रहने के लिए बिना भोजन के काम नहीं चला सकता। खेती तो बिना भारी उद्योग के हो सकती है परन्तु उद्योग बिना कृषि के नहीं चल सकते। आर्थिक जीवन क्षमता घरेलू हो या विदेशी, कृषि की उपेक्षा करके प्राप्त नहीं की जा सकती। और आर्थिक जीवन क्षमता पर ही देश की राजनीतिक स्थिरता और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति निर्भर है। हमारे पड़ौसी छोटे-छोटे देश, परम्परागत मित्र हमें छोड़कर दूसरों की सहायता तथा बचाव की ओर देख रहे हैं। क्योंकि भारत स्वयं अपना काम नहीं चला सकता।

चौ० चरण सिंह खेतिहर संरचना के बारे में अपनी नीति स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि खेती की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए 3 कारण हो सकते हैं: (1) भूमि (2) श्रम (3) पूँजी।

भूमि

वह कहते हैं कि जहां तक भूमि का सम्बन्ध है वह सीमित है, उसे बढ़ाया नहीं जा सकता। लेकिन भूमि की उत्पादकता इस पर निर्भर है। कि वह किसके पास है और वह उस पर कैसे काम करता है। खेती स्वावलम्बी है, खेती का सहकारी कारण या सामूहिकीकरण हो गया है। या फिर बड़े-बड़े सहकारी या निजी फार्म हैं।

वह कहते हैं कि खेतीहर संगठन के चार उद्देश्य हो सकते हैं:

1. अधिकतम उत्पादन हो अर्थात गरीबी का उन्मूलन हो।

2. रोजगार की व्यवस्था की जाये। खेतों पर काम करने के लिए कम से कम लोग रहें।

3. सम्पत्ति का न्यायोचित वितरण हो अथवा आय में अनुचित असमानता न हो: अर्थात अधिकतम और न्यूनतम भूमि की सीमा निधारित की जायें।

4. जिन्दगी के उस ढंग का प्रसार हो जो हमने अपने लिए चुना हो। अर्थात दूसरे शब्दों में जनवादी प्रवृत्तियों को उभरने दिया जा सके। उसे सुदृढ़ बनाया जा सके।

अतः हम इन चारों उद्देश्यों को पूरा कर सकते हैं। जिसमें खुद-मुख्तार कृषक अपनी छोटी-छोटी जोतों के मालिक हों, और सेवा

सहकारी समितियां उनको एक दूसरे से जोड़े रहें तथा खेतीहर को बेदखली की चिंता न सताती हो। जिसका अर्थ है जमींदारी व्यवस्था का पूर्ण रूप से उन्मूलन हो, भूमि जोतने वाले के अधिकार सुरक्षित तथा स्थायी हों।

चौ० चरण सिंह सहकारी फार्मों के बारे में कहते हैं कि मानव स्वभाव तो ऐसा है कि एक मां के जने दो भाई परिवार के मुखिया के मरने पर इकट्ठे नहीं रह सकते और अलग हो जाते हैं। इसलिए यह विचार कपोल कल्पना है कि सहकारी फार्म बनने पर मामूली गृहस्थ सहायक पड़ोसियों तथा गांव के अन्य लोगों, जिनसे उसका वास्ता नहीं उनके हितों को अपना हित समझे। सहकारी फार्म ऐसे लोगों को साथ लाने का प्रयास रखता है जिनमें न कोई पारिवारिक न सामाजिक रिश्ता होता है। अतः इस प्रकार की कल्पना रामराज्य में ही हो सकती है, स्वराज्य में नहीं। पाठकगण आज अन्य सहकारी संस्थाओं को देख रहे होंगे जिसमें भ्रष्टाचार और घाटे के सिवा कुछ नहीं। अतः चौ० साहब ने इसीलिए सहकारी खेती के विरुद्ध अपनी आवाज उठायी थी।

चौ० साहब कहते हैं कि किसान यद्यपि परिवर्तन विरोधी होते हैं प्रतिक्रियतावादी नहीं। वह निजी सम्पत्ति या अर्थव्यवस्था के पक्ष में ही हो सकते हैं, किन्तु वे शोषक कदापि नहीं सकते।"

चकबन्दी व सेवा सहकारिता में उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण योग दान समझते हैं। और वह कहते हैं कि बिखरी हुई जोतों का एक चक बनादेने से उत्पादन के तीनों कारकों भूमि, श्रम तथा पूँजी का कारगर ढंग से उपयोग किया जा सकता है।

अन्त में सारांश यह है कि कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए भूमि का आकार, भूमि की स्थिरता तथा चकबन्दी द्वारा खेतों का एक जगह होना अनिवार्य है।

कृषि में पूंजी

भूमि की स्थिरता के बाद चौधरी साहब उत्पादन बढ़ाने में पूंजी

को एक महत्त्वपूर्ण कड़ी मानते हैं, तथा पूँजी में पशु, यन्त्र, बीज, सिंचाई के साधन, खाद व कीटाणु-नाशक दवाओं, भूमि को। श्रम व पूँजी में वृद्धि के साथ-साथ कृषि उत्पादन खेती की तकनीक अथवा कला में सुधार व नवीनीकरण पर भी निर्भर है। जिसका उद्देश्य उत्पादन में भूमि, श्रम और पूँजी को पहले से बेहतर ढंग से जोड़ा जाना है ताकि उपलब्ध संशोधनों से अधिकतम लाभ उठाया जा सके। इसके लिए जरूरी है कि भूमि में पूँजी उससे कहीं अधिक मात्रा में लगाई जावे, और कृषि में तकनीकी सुधार उससे कहीं अधिक तेज गति से किया जावे। सिंचाई व उर्वरकों में पूँजी लगाने के साथ-साथ अनुसंधान की भी आवश्यकता है। खेतीहर के लिए सबसे अधिक प्रभावशील अभिप्रेरणा बीज, जल अथवा सिंचाई प्रबन्ध व उर्वरकों के प्रयोग आदि के संबंध में अनुसंधान से ही मिल सकती है। परन्तु चौ० साहब कृषि में पूंजी का अभाव मानते हैं। भारत सरकार बराबर खेती की प्राथमिकता देने की बात कहती आयी है। यदि कोई कहे कि कृषि को जानबूझ कर पूंजी से वंचित रखा गया है तो यह सच ही है। भारत सरकार खेलों पर 500 करोड़ रुपये लगा सकती है, होटल निर्माण पर अरबों रुपया खर्च किया जा सकता है, राजदूत निवास पर सैकड़ों हजार रुपये लगाये जा सकते हैं; परन्तु कृषि के लिए नहीं। यही कारण है कि देश का कृषि उत्पादन औद्योगिक उत्पादन के अनुपात में कुछ भी नहीं बढ़ा। सरकार राष्ट्रीयकृत बैंकों के द्वारा किसानों को ऋण देने का ढिंढोरा पीटती है परन्तु 12 से 15 प्रतिशत सूद लेकर। इसके विपरीत उद्योगपतियों से 4% के आस-पास सूद लेती है। ऐसा दिखाई देता है कि या तो उन्हें धनवांन समझकर या द्वेषवश इस प्रकार उनसे सूद में भिन्नता और पक्षपात किया जाता है। अगर किसान अन्य साधनों से पूंजी का प्रबंध न करे जो निजी क्षेत्र समझे जाते हैं जिनमें सहकारी संस्था, पेशेवर महाजन, रिश्तेदार, व्यापारी, कमीशन ऐजेन्ट आते हैं तो सरकारी क्षेत्र का निवेश बहुत ही कम होता है।

चौधरी साहब के अनुसार शहरी व सरकारी क्षेत्रों में यह विश्वास फैला हुआ है कि किसानों को उनके उत्पादन के लिए इतनी कीमत मिल जाए कि उनकी लागत पूरी हो जाए व उनको उचित मुनाफा मिल जाय तो उन्हें शिकायत की कोई गुन्जाइश नहीं होगी।

कृषि कीमत आयोग इसी आधार पर हिसाब लगाता है। कीमतों के उतार-चढ़ाव के बारे में गेहूं के उत्पादकों की प्रतिक्रिया से पता चलता है कि खेतीहर भी कीमतें व मुनाफा ध्यान में रखता है। यदि लागत से कुछ अधिक कीमत देने के सिद्धान्त से किसान को गेहूं पैदा करने में दूसरी फसलों की उपेक्षा कम मुनाफा होता है तो अन्य समझदार व्यवसायियों की तरह वह भी गेहूं पैदा न करके दूसरी फसल उगाने लगेंगे। जिसका उन्हें हक भी है।

वह अपने सुझाव देते समय उत्पादक, उपभोक्ता, व्यापारी व सरकार के हितों को सन्तुष्ट करते हैं जो इस प्रकार हैं :

(1) सिवाय उस स्थिति के जब बहुत ही कमी हो, खाद्यान्न का आयात बिल्कुल न किया जाये।

(2) खाद्यान्न के लिए एक ही क्षेत्र मान लिया जाये। दूसरे शब्दों में सारे देश को खाद्यान्न को देश के एक भाग से दूसरे भाग में लाने, ले जाने पर कोई प्रतिबन्ध न हो।

(3) किसी एक वर्ष को आधार मानकर उस वर्ष में खेतीहर अपने-अपने उत्पादन की जो कीमत पाता है और उस सामान की कीमत को लेकर जो वह खरीदता है दोनों का अनुपात निकाला जाये और इस अनुपात से नापा जाये कि किसी वस्तु की कीमत उपभोक्ता अथवा उत्पादक के लिए उचित है अथवा अनुचित। इस तरह निर्धारित दर को समता कीमत माना जाये।

(4) मुख्य खाद्यानों की समता कीमत निर्धारित करके सरकार को यह घोषणा कर देनी चाहिए कि साधन व्यापार में कोई हस्तक्षेप तब तक नहीं करेगी जब तक समता की 85% व 115 प्रतिशत के के बीच व्यापार चलता है। 85 प्रतिशत को न्यूनतम और 115% को अधिकतम कीमत कहना चाहिए।

(5) जब किसी खाद्यान्न का भाव न्यूनतम कीमत से नीचे गिरे तो सरकार सीधे उत्पादक से खरीद ले।

(6) जब भाव अधिकतम कीमत से ऊपर हो तो सरकार को अधिकार होना चाहिए कि वह घर हो या व्यापारी के पास—उसकी जरूरत का खाद्यान्न छोड़कर न्यूनतम भाव पर सरकार खरीद ले।

(7) छोटे जोतदारों की आपात बिक्री को रोकने के लिए प्रत्येक विकास क्षेत्र पर उत्पादक न्यूनतम कीमत पर गोदाम में अपना माल रख सके। जब उसे कुछ ऊंचा भाव बाजार में मिले तो वह उस पूंजी का सूद व गोदाम का किराया देकर अपना माल उठा सकता है लेकिन यदि खुले बाजार में भाव 115% से ऊपर बढ़ जाता है तो सरकार उसे न्यूनतम भाव पर खरीद ले।

अतः उत्पादक को अपनी उपज का सही भाव मिलने का इतमीनान रहेगा और मुद्रा-स्फीति की आशंका बहुत कम रहेगी। आज चीनी का संकट केवल इस नीति के विपरीत चलने पर ही पैदा हुआ है चूंकि चौ० चरणसिंह और उनके साथियों ने तत्कालीन प्रधानमंत्री को सुझाव दिया था कि अभी चीनी और गुड़ के भाव इतने गिर गये हैं कि किसान वर्ग बेचैन है अतः सरकार को गुड़ व चीनी का एक बड़ा भारी स्टाक बनाना चाहिए, जिससे उत्पादक को उसकी उपज का स ी दाम मिल सके और संकट के समय उसका मुकाबला किया जा सके। परन्तु मोरारजी ने किसान विरोधी नीति अपनाई जिसका आम उपभोक्ताओं पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा और गन्ना उत्पादकों ने गन्ना कम बोया, जिससे चीनी की पैदावार घटी।

अधिक उत्पादन से किसान की दुविधा तथा भाव का नीचे गिरना

अधिक उत्पादन से जो भाव गिरते हैं उनसे कृषक को जो परेशानी होती है उसके निराकरण के लिए उन्होंने 5 सुझाव दिए हैं जो इस प्रकार हैं:

(1) दूसरे देशों को कृषि उपज का निर्यात किया जाये।

(2) हमारे देशवासी उसका अधिक उपयोग करें।

(3) फसलों की अभिरचना बदली जाये।

(4) देश के अन्दर ही उद्योगों में कृषि-उत्पादनों का प्रयोग किया जाये।

(5) खेतीहर मजदूरों की संख्या कम की जाये।

चौधरी साहब हमेशा से खेती में कम आदमी रहने तथा कृषि से हटकर कृषीतर रोजगार को तलाश करने के लिए कहते रहे हैं उनके अनुसार कृषि व कृषीतर कार्यों में अन्तर एक ऐसा आर्थिक अवयव है जो किसान को दूसरे धन्धों की ओर आकर्षित कर सकता है।

आय की दृष्टि से उद्योग व वाणिज्य में कृषि की अपेक्षा अधिक आकर्षण है। किन्हीं वजुहात से हमारा नौजवान उधर आकर्षित नहीं होता। जबकि जापान में एक भी नौजवान कृषि-कार्य में लगा हुआ नहीं है। अतः पैतृक भू-सम्पत्ति का बंटवारा इस प्रकार होना चाहिए कि किसी का हिस्सा 9हेक्टेयर अथवा 5/2 एकड़ से कम न हो। अत: अन्य हिस्सेदारों को उचित मुआवजा दिया जाये। कुछ भी हो सरकार प्रचार माध्यम से कृषकों को यह बताने का कष्ट करे कि भूमि सीमित है। अतः अन्य रोजगार उनके अपने हित में हैं। भूमि लोगों की अनिश्चित जनसंख्या का पोषण नहीं कर सकती। अत: चौ॰ साहब जिस प्रकार की अर्थव्यवस्था की वकालत कर रहे हैं उसमें किसान के बेटों को भूमि की आवश्यकता नहीं होगी और न ही उन्हें अपने घर छोड़ने होंगे। उन्हें अपने गांव में या आस-पास कोई छोटा कुटीर उद्योग धन्धा शुरू कर देना चाहिए। इस तरह के धन्धों के लिए बहुत धन की आवश्यकता नहीं होती, और वे खेती के साथ-साथ भी चल सकते हैं।

कृषि से हटकर कृषीतर रोजगारों में किसानों में उद्यम व जोखिम उठाने की भावना, भौतिक उन्नति की इच्छा तथा कड़ा परिश्रम करने की तत्परता होनी चाहिए जो आज अपने पश्चिमी भागों में रहने वाले कुछ समुदायों की जैसे सिन्धी, गुजराती, मारवाड़ी तथा पंजाबी लोगों की भावना से प्रकट होता है।

अत: आर्थिक प्रगति के लिए दो शर्तें एक साथ जरूर हैं : कृषि का उत्पादन बढ़े व लोगों की सामाजिक-आर्थिक मनोवृत्तिबदले तथा कृषि के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ खेतीहर की संख्या में तुलनात्मक कमी होनी चाहिए।

गाँव व खेती की उपेक्षा

चौ० चरण सिंह गांव व खेती की उपेक्षा के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं :

जैसे-जैसे बुद्धिमान, शिक्षित तथा सम्पन्न लोगों का प्रकाश गांवों से नगरों की ओर बढ़ता जाता है वैसे-वैसे ग्रामों की दशा शोचनीय होती जाती है। उनके सांस्कृतिक साधन कंगाल हो गये। कृषि की उपेक्षा का सीधा आघात खेतीहरों की आर्थिक अवस्था पर पड़ा है। इन खेतीहरों में कृषक तथा कृषि मज ूर दोनों सम्मिलित हैं। ग्रामीण जनसंख्या का अधिकांश भाग खेतीहरों से बना है तथा कारीगरों और ग्रामीण समुदाय के दूसरे कामगरों की आय खेतीहरों की आय से प्रभावित होती है। खेतीहरों की आय तथा नगरों में निवास करने वाले गैर-कृषि कर्मियों की आय में अन्तर बढ़ा है जो इस प्रकार है : 1950-51 ई० में कृषि जनसंख्या की आय 197.8 रुपये प्रति व्यक्ति थी, जबकि नगर में गैर-कृषि जनसंख्या की आय उसी वर्ष 399.4 रुपये प्रति व्यक्ति थी। इसके विपरीत 1976-77 ई० में कृषि जनसंख्या की औसत आमदनी घटकर 195.5 रुपये प्रति व्यक्ति हो गई और नगरों में रहने वाले लोगों की आय इसी वर्ष बढ़कर 813.2 रुपये प्रति व्यक्ति हो गई। यह आँकड़े नेशनल एकाउन्ट्स के स्रोत से लिये गये हैं।

इस प्रकार से सामाजिक सुविधाओं जैसे स्वास्थ्य, आवास,

परिवहन, बिजली तथा शिक्षा में गाँव और शहर में भेद किया गया। अगर हल चलाने वाला स्वस्थ नहीं होगा तो उत्पादन कैसे बढ़ेगा। अगर गांव में बिजली न होगी तो सहायक उद्योग कैसे पनपेंगे। पाँचवीं योजना में शहरी आबादी के 85% को पीने का पानी नलों से उपलब्ध कराया गया जबकि पूरे भारत में 1 लाख 1600 हजार ग्रामों में पीने के साफ पानी की व्यवस्था नहीं थी। 90,000 गाँव तो ऐसे थे जिनके आस-पास एक मील तक भी पानी उपलब्ध नहीं था।

पहले तो गांव में विजली मिलती ही नहीं और अगर मिलती भी है तो गांव और शहरों के अनुपात में गांव से अधिक कीमत ली जाती है। जैसा कि 1970-71 में गांवों को 10.6 पैसे प्रति यूनिट और शहरों को 15.78 पैसे प्रति यूनिट बिजली सप्लाई होती थी तथा 1973-74 ई० में नगरों को 14 पैसे यूनिट तथा ग्रामों को 29.75 पैसे प्रति यूनिट बिजली मिलती थी—और बिरला बन्धुओं को 2 पैसे प्रति यूनिट एल्मूनियम बनाने को बिजली दी जाती है। इसके विपरीत किसानों को सिंचाई के ट्यूबवैल पर 144 रुपया सालाना प्रति हार्स-पावर देना पड़ता है।

कृषि की उपेक्षा का कारण यह है कि हमारा शासक वर्ग शहरी है। उसका दृष्टिकोण शहरी है। किसी का दृष्टिकोण क्या है यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसका किस समाज में, कैसे घर में, कैसे वातावरण में जन्म हुआ तथा कैसा लालन-पोषण हुआ। जिस हद तक देश का नेतृत्व गांव की आवश्यकताओं से अपरिचित होता है उसी हद तक गांव के लिए उसकी अधिक नोति प्रभावित होती है।

चौ० चरण सिंह जी के अनुसार शहरों में रहने वाले मन्त्रियों और उच्चाधिकारियों के लिए यह समझना मुश्किल होता है कि गांव वालों के दिमाग कैसे होते हैं। उन्हें किसान समुदाय की आवश्यकताओं, समस्याओं व असुविधाओं का न तो व्यक्तिगत ज्ञान ही होता है, न उसकी मानसिक समझ। उनके लिए भूमि की समस्या एक अनबूझ पहेली है।

अतः गांव के मूक, भूखे-नंगों की दुर्दशा के प्रति ईमानदारी से सहानुभूति रखते हुए भी नेहरू ने आर्थिक विकास के लिए विदेशी

अर्थशास्त्रियों द्वारा सुझाई गई उद्योग पर आधारित नीति स्वीकार कर ली। माओत्से-तुंग के विपरीत, नेहरू ने भारतीय समस्याओं के लिए कोई स्वतन्त्र दृष्टिकोण नहीं अपनाया, इसका कारण ढूंढ़ने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं। माओ के विपरीत, नेहरू शहरी माहौल व पश्चिमी शिक्षा की देन थे।

यह है चौ० चरण सिंह की गांधीवादी नीति जिसके द्वारा उन्होंने कृषि-क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने, ग्राम की शिक्षा, ग्रामीण उद्योग तथा ग्रामीण जनता व नगरों की जनता में असमानता तथा बेरोजगारी के बारे में अपनी नीति प्रतिपादित की है।

बेरोजगारी उन्मूलन

बेरोजगारी के बारे में चौ० चरण सिंह कहते हैं कि यह भारत की सबसे बड़ी शत्रु है। या तो इसका उन्मूलन कर देना चाहिए या यह सभ्य राष्ट्रों में हमारा उन्मूलन कर देगी। बेरोजगारी की समस्या का हल ही गरीबी और आय की व्यापक असमानताओं की समस्याओं के समाधान की कुंजी है। जब बेरोजगार को उसके रोजगार की गारन्टी मिल जायेगी तो उसकी गरीबी हद से कम होने लगेगी। किसी सेना के मनोबल का मापदण्ड यह है कि वह अपने घायल सैनिकों की देख-भाल कैसे करती है; उन्हें मैदान में पड़ा न छोड़ने के लिए कितनी जोखिम उठाती है। इसी प्रकार अर्थनीति या राजनीति की गुणवत्ता या मामदण्ड यह है कि वह अपने पीड़ित, दुर्बल, बेरोजगार मूक नागरिकों का उद्धार कैसे करती है। और उन सभी लोगों को, जो असहाय हैं, कैसे राहत पहुंचाती है। उनमें अधिकतर न वोट देते हैं और न यह जानते हैं कि राजनीतिक सिद्धान्त का मतलब क्या है। उनको इतने दिनों से इतने प्रकार से धोखे दिए जा रहे हैं कि वह अब यह विश्वास ही नहीं कर रहे हैं कि कोई प्रगति भी हो सकती है। राजनीतिक नेतृत्व की परख अब उनके क्रान्तिकारी नारों से नहीं होगी बल्कि इन बेचारों के लिए किये गये काम से होगी।

दुर्भाग्य है कि अभी तक राजनीतिक क्षेत्रों में यह पूरी चेतना नहीं है

कि हमारा उद्धार तभी सम्भव होगा जब हम उन दोषपूर्ण नीतियों में जिनकी वजह से आज की स्थिति उत्पन्न हुई है, आमूल परिवर्तन करेंगे। किसी भी नीति का उद्देश्य यह होना चाहिए कि लोगों को ऐसा काम मिले जो आर्थिक दृष्टि से उत्पादक हो और उससे रहन-सहन के माकूल स्तर के लायक आमदनी हो। काम का अर्थ मुख्य रूप से यह होना चाहिए कि लोगों के लिए अधिक सामान व सेवाओं का उत्पादन हो। यह उद्देश्य नहीं होना चाहिये कि जिन लोगों की जरूरत नहीं है या जिनको कुछ भी नहीं आता सिर्फ़ उन्हें मजदूरी मिल जाय। ऐसा किया गया तो उससे मुद्रा-स्फीति बढ़ेगी।

चौ० साहब कहते हैं कि हमारे यहाँ पूंजी व भूमि सीमित है, और श्रमिक बल असीम मालूम होता है। यदि अधिकतम दर पर भी पूंजी लगाई जाय तो भी आने वाले कुछ दिनों तक श्रम की अपेक्षा उसकी कमी रहेगी। ऐसी स्थिति में जहाँ तक हो सके पूंजी के स्थान पर श्रम से काम लिया जाय और किसी भी हालत में ऐसी पूंजी प्रधान परियोजना को हाथ में न लिया जाये जिसका कोई श्रम प्रधान विकल्प सम्भव न हो।

असंख्य कृषीतर रोजगार के साधन बनाने व बढ़ाने के लिए कृषि का उत्पादन बढ़ाना जरूरी है। यदि कृषि को उचित प्राथमिकता दी जाए व उनमें आवश्यक पूँजी लगाई जाए, तो कुछ समय के लिए इसमें निर्माण उद्योग से अधिक रोजगार मिल सकता है। तीन क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें बड़े स्तर पर रोजगार के लिए अवसर पैदा किए जा सकते हैं:

(1) कृषि जिसमें पशुपालन, देशी खाद बनाना, सफाई तथा गोबर गैस शामिल है।

(2) गांव में निर्माण कार्य, जैसे सिंचाई परियोजनायें, भूमि सरंक्षण, भूमि उद्धार, जंगल लगाना, आदि।

(3) ग्रामीण व कुटीर उद्योग।

अर्थात् सिंचाई का विस्तार करने, जंगल लगाने, भूमि का उद्धार करने तथा ऐसे ही ग्रामीण निर्माण आरम्भ करने से कृषि व वन विभाग में नये रोजगार व अवसर पैदा होंगे। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की नयी

व्यवस्था की गई है वहां अनुमान लगाया गया है कि कृषि में रोजगार के 60 प्रतिशत नये अवसर खुल गये।

अत: 'टाइम्स आफ इण्डिया', नई दिल्ली ने एक लेख 21 अक्टूबर 1975 ई॰ को अपने सम्पादकीय में लिखा है। उसने पिछले नौ वर्षों में संगठित उद्योग में बेरोजगारी में कमी न आने पर टिप्पणी करते हुए लिखा था :

"......इस स्थिति के लिए कुछ हद तक इस बात को दोष दिया जा सकता है कि पिछले 3 दशकों में जो उपभोक्ता उद्योग स्थापित हुए हैं वह सभी श्रमिकों को विस्थापित करने वाले हैं। जूता बनाने के कारखाने, रोटी बनाने के मशीनरी-कृत कारखाने, खाना पकाने के बर्तन बनाने वाले कारखाने मशीनों से ईंट बनाने वाली भट्टियां सूती कपड़ा रंगने व छापने वाली मिलें तथा ऐसे ही धन्धों ने लाखों जूता बनाने वालों, रोटी बनाने वालों, कुम्हारों, ईंट बनाने वालों, कपड़े की छपाई करने वालों को बेरोजगार बना दिया है। अभी तक यह धन्धे बिल्कुल खत्म नहीं हुए हैं। इसलिए अभी सरकार के लिए यह सम्भव है कि उनका पुनरुत्थान करके दसियों लाख आदमियों को रोजगार दे दे। इसके लिए सिर्फ यह करना हो कि सम्बन्धित बड़े स्तरीय धन्धों पर प्रतिबन्ध लगा दिये जायेगा।"

अत: चौ॰ साहब भी यही ठीक समझते हैं कि श्रम-प्रधान धन्धे तभी जीवित रह सकते हैं या उनका पुनरुत्थान किया जा सकता है जब उन्हें कानून द्वारा संरक्षण प्रदान करके बड़े स्वचालित उद्योगों के आक्रमण से बचाया जाये। यह हम अगर सचमुच करना चाहते हैं तो कानून बनाकर तय करना होगा कि कौन उद्योग किस प्रकार का उत्पादन कर सकता है। जो माल कुटीर अथवा लघु उद्योग पैदा कर सकते हैं उसकी भविष्य में किसी बड़े या मंझोले स्तर के उद्यम को इजाजत नहीं दी जायेगी! इसका मतलब है कि आज जो मिलें व कारखाने ऐसा माल बना रहे हैं जिसका उत्पादन छोटे व कुटीर उद्योगों द्वारा किया जा सकता है, उनको अपना उत्पादन देश में बेचने की इजाजत नहीं होगी। वे इसे निर्यात कर सकते हैं। इस निर्देश पर तुरन्त कार्य नहीं किया जा सकता तो धीरे-धीरे किया जाये, तथा

उन उद्योगों को जो अपना माल बाहर भेजेंगे, बाहर की मंडियों से प्रतिस्पर्धा करने के लिए सरकार उनकी मदद करे। और इस होड़ में वह अपना माल बढ़िया व ऊंची किस्म का बनायेंगे। लेकिन यदि वे विदेशी प्रतियोगिता में टिक न सके तो उन्हें अपना धन्धा बन्द करना होगा। लेकिन घरेलू मण्डी छोटे और कुटीर उद्योगों के माल के लिए ही सुरक्षित रहेगी।

चौ० चरणसिंह कहते हैं कि गांधी जी ने सोचा था कि हम अपने ही साधन-भण्डार के आधार पर और अपनी ही तकनीकी से या उन तकनीकी में से जो हमारे यहां पूँजी की कमी व श्रम के बाहुल्य की स्थिति के अनुकूल हों, अपनी अर्थव्यवस्था की संवृद्धि करेंगे। हमारी संवृद्धि के लिए कौन सी नीति उपयुक्त होगी, यह इस बात से तय होना चाहिए था कि हमारे पास है क्या। आत्मनिर्भरता को बहुत ऊंची प्राथमिकता दी गई थी।

दुर्भाग्यवश स्वतन्त्रता के बाद जिन लोगों ने नेतृत्व संभाला उनके कुछ दूसरे ही विचार थे। देश की आर्थिक योजनायें विदेशी प्रौद्योगिकी के आधार पर बनाई जाने लगीं। इस्पात ने लकड़ी व बांस का स्थान ले लिया जो कम उपलभ्य वस्तु है। चूने और गारे का स्थान सीमेंट ने ले लिया। घरेलू खाद की जगह रासायनिक उर्वरक अधिक पसन्द किये जाने लगे। उर्वरकों के उत्पादन में भी कोयले की अपेक्षा नेफता पसन्द किया जाने लगा।

इस प्रकार जान-बूझ कर व मुस्तैदी के साथ हम गांधी जी के माँग से हट गये। आत्मनिर्भरता की आवश्यकता को पूरी तरह भुला दिया गया। विदेशी प्रौद्योगिकी को हमारी अर्थव्यवस्था पर लाद दिया गया और यह भी नहीं सोचा गया कि दोनों अलग-अलग तरह के व अलग-अलग मात्रा में साधन चाहिए। यह भी नहीं सोचा गया कि राष्ट्रीय आय की वृद्धि में तथा अधिक सेवाओं व अधिक माल को उपलब्ध करने में व्यक्तियों का योगदान जरूरी है।

हमारी आर्थिक प्रगति की नीतियों में इस दुर्भाग्यपूर्ण मोड़ के आने का नतीजा यह हुआ कि देश के अन्दर एक शक्तिशाली वर्ग बन गया

जिसके हित हर प्रकार के आयात व विदेशी प्रौद्योगिकी के अन्धाधुन्ध आयात के साथ जुड़ गए और यह फिजूल की दलील दी जाने लगी कि इन आयातों से ही देश के विकास की गति तेज होगी।

हमारे देश में आर्थिक संकट आया ही इसलिए है कि हम गांधी जी के बताये हुए मार्ग से हट गये हैं। गांधी जी की नीति सीधी-सादी थी। जनता को सम्पत्ति के उत्पादन में लगाना चाहिए। जनता गांव के जंगलों का विकास करे, खाद बनाये, नाले-नालियां खोदे और असंख्य छोटी-छोटी परियोजनाओं से ऊर्जा बनाए। जितने व्यापक स्तर पर हो सके जनता को, पहल करने दी जाय। जरूरी हो तो बड़ी परियोजनाओं को भी लिया जाय। लेकिन स्थानीय साधनों से ही उन्हें चलाया जाय। परन्तु ऐसा नहीं किया गया, फलस्वरूप गरीब गरीब होता गया और धनवान धनवान बनता गया। अतः अन्त में देश में अमीरों के और ज्यादा अमीर होने की पुष्टि करते हुए चौ० साहब एक तालिका पेश करते हैं, जो निम्न प्रकार है।

व्यावसायिक घराने सन् 1951 ई० से 1976 में कितने प्रतिशत अपनी पूंजी बढ़ा सके, उसका विवरण इस प्रकार है :

व्यावसायिक घराने	1951 ई० से 1976 तक पूंजी प्रतिशत बढ़ा
टाटा	42.2%
बिरला	29.9%
मफतलाल	46.7%
थापर	54.7%
आई० सी० आई०	24.3%
ए० सी० सी०	23.3%
श्री राम	35.6%
जे० के० सिंघानिया	63.8%
सूरजमल नागर,मलवाल चंद	35.9%
साराभाई	48.8%
किर्लोस्कर	54.8%

बजाज	51.1%
सिन्धिया	70.9%
लारसन टोवरां	109.0%
मोदी	86.4%
महिन्द्रा	73.2%

उपरोक्त तालिका से विदित होता है कि आज के उद्योगपति अंग्रेज काल के महाजन और मुस्लिम काल के सेठ या व्यापारी एक ही रक्त और नसल से सम्बन्धित है जो समय-समय पर अपने धन और व्यापार को बढ़ाने के लिए समान हथकण्डे अपनाते चले आ रहे हैं। हकूमत के लोगों को पैसा देकर और उन्हें मनमानी भेंट-पूजा अर्पित करके जनता में साम्प्रदायिकता और जातिवाद का जहर फैला कर तथा हृदयहीनता से लाचार और दुखी व्यक्ति का शोषण करके अपनी दौलत को बढ़ाते रहे। क्या कारण है कि जिस प्रदेश की भूमि अन-उपजाऊ हो वह क्षेत्र प्रतिवर्ष अकाल की विभीषिका से पीड़ित हो, वहाँ न जल हो, न अन्न हो और न ही आवागमन के साधन ही हों। जहाँ प्राचीन काल से वर्तमान तक विदेशी और स्वदेशी लुटेरों के आक्रमण होते रहे हों। सामन्तवाद ने जनता की भलाई के लिए कुछ न किया हो, उस क्षेत्र का व्यापारी धनाढ्य हो और उनकी सेठाई और पूंजी काश्मीर से कन्याकुमारी तक फैली हुई हो, तो निश्चय ही गरीब किसान मजदूर का खून पीकर सामन्तों और लूटेरों से गठबन्धन करके भारतवर्ष के हर क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। नाम मात्र के लिए जनता को धोखे में डालने के लिए धर्म के नाम पर कुछ चिकित्सालय, धर्मशालायें और मन्दिर बनवा कर हमारी आंखों में धूल झोंकते हैं। यही कारण है कि जिस क्षेत्र में जितना पिछड़ापन, अशिक्षा, अन्ध-विश्वास था उस क्षेत्र का व्यापारी उतना ही समृद्ध और सम्पन्न बना। मरुभूमि और बागड़ का शोषित किसान और मजदूर हजारों वर्षों से सत्ता और पूंजीवाद की चक्की में पिसता रहा। भिवानी, लुहारी, मेडता, पिलानी, महेन्द्रगढ़, जैसलमेर, उदयपुर, हिसार, जोधपुर और जयपुर तथा अन्य माड़वार क्षेत्र का महाजन उतना ही

सम्पन्न हुआ जितना उस क्षेत्र का किसान और मजदूर पिछड़ा और एक-एक रोटी से मोहताज हुआ। केवल जातिवाद और साम्प्रदायिकता का प्रसाद, धर्म का झूठा नारा और शोषण ही उसकी राष्ट्रीयता थी, और है। जिसके द्वारा हजारों वर्षों से आज तक वह पूंजीपति सरकार पर अपना पंजा जमाये हुए है।

दूसरी ओर किसान कर्ज के बोझ में दब रहा है। अकेले उत्तर प्रदेश में ही किसान राष्ट्रीयकृत बैंकों, सरकारी समितियों, लैण्ड मोरगेज बैंकों तथा अन्य महाजनों के माध्यमों से अरबों रुपयों का कर्जदार हो गया है। ग्रामों में उन्हें स्वच्छ जल भी नहीं मिल रहा है। उनकी शिक्षा संस्थाएं जर्जर हो चुकी हैं। रास्तों और रोशनी का कोई प्रबन्ध नहीं। यहां तक कि किसानों और मजदूरों की बहू-बेटियों के लिए शौच जाने के लिए भी यह सरकार कोई प्रबन्ध नहीं कर सकी। अतः चौधरी चरण सिंह ने किसानों में चेतना जगाने के लिए 23 दिसम्बर 1979 को दिल्ली के बोट क्लब पर एक विशाल किसान जन-समूह को सम्बोधित करते हुए कहा कि "अब भारत में 70 प्रतिशत भूखी और नंगी, मूक तथा बेसहारा जनता का शोषण रोका जाए तथा देश के बजट का आधा भाग ग्रामीण जनता पर खर्च किया जाय।" और ऐसा उन्होंने वित्तमंत्री का पद ग्रहण करके किया भी। केन्द्रीय सरकार के कुल बजट का 40% उन्होंने ग्रामींण जनता के लिए सुरक्षित किया। इस किसान चेतना का प्रभाव सारे भारत में हुआ। पूरे देश के किसान एक मंच पर इकट्ठा हुए। अब से पहले किसानों के आन्दोलन क्षेत्रीय होते थे, जैसा कि पहले अध्याय में लिखा जा चुका है, परन्तु केन्द्रीय स्तर पर यह पहला प्रयास था। इसी प्रभाव से भारतीय जनता पार्टी को जो, कि जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से प्रभावित थी, बम्बई के अपने अधिवेशन में यह घोषणा करनी पड़ी कि "भारतीय जनता पार्टी गांधीवादी आर्थिक विचारधारा को अपना रही है।" इतना ही नहीं, सत्ताधारी पार्टी ने इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में किसान-शुभचिंतक होने का नारा दिया और 16 फरवरी 1981 को बोट क्लब पर एक किसान रैली कराई।

जब यह पंक्ति लिखी जा रही थी उस समय इन्दिरा गांधी तथाकथित किसान रैली को कह रही थीं कि "मेरे पिता स्वर्गीय

नेहरू को और मुझे भी किसानों से उतना ही लगाव है जितना किसी अन्य को।" फलस्वरूप गेहूं पैदा करने वाले किसान को उनकी उपज का सही और वाजिब दाम न देकर अमरीका से 15 लाख टन गेहूं 200 रु० प्रति क्विटल से मंगाकर अपना प्रेम किसानों के प्रति दिखाया। अतः पूरे देश में किसान चेतना का एक युग आरम्भ हुआ। आज पूरे देश का किसान संगठित होकर केन्द्रीय कक्ष में इकट्ठा होने जा रहा है। यह सब कुछ वयोवृद्ध किसान नेता चौधरी चरणसिंह जी की किसान चेतना का ही फल है। जो लोग आत्मा से किसान विरोधी थे वे भी शनैः-शनैः किसान-लेबिल अपने चेहरों पर लगाकर किसानों के शुभचिन्तकों की पंक्ति में खड़े होने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। परमेश्वर उनकी मदद करे।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. भारत की अर्थनीति (चौ० चरणसिंह)
2. आर्य का नवीन इतिहास (उपेन्द्रनाथ शर्मा)
3. क्षत्रियों का इतिहास (राजपाल सिंह शास्त्री)
4. चौ० चरणसिंह का जीवन-चरित्र (सुखबीर सिंह गोयल)
5. इलियट एण्ड हाउन्स, हिन्दी संस्करण, प्रथम खण्ड (अनुवादक डॉ० मथुरा लाल)

इलियट एण्ड हाउन्स हिन्दीं संस्करण, द्वितीय, तृतीय चतुर्थ, पंचम, छठा, सातवां तथा आठवां खण्ड (अनुवादित डॉ० मथुरा लाल शर्मा)

6. बिजोलिया किसान आन्दोलन का इतिहास (शंकर सहाय सक्सेना, तथा डॉ० पद्मजा शर्मा एम० ए० पी० एच० डी०)
7. Peasants & Raj (Oxford University Press)